बुन्देली दरसन
बुन्देली मेला
देवश्री गौरीशंकर मंदिर, हटा, दमोह (म.प्र.)
नगर पालिका परिषद, हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

नगरपालिका परिषद्, हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

नगरवासियों की सेवा में सतत् सक्रिय

- जल अभावग्रस्त वार्डों में टेंकरों से जल प्रदाय
- अतिरिक्त पाईप लाईन बिछाकर जल प्रदाय
- नगर के 10 मार्गों को क्रांक्रीट सीमेंट से बनवाया
- गौरीशंकर जी वार्ड में सामुदायिक भवन का निर्माण
- मुक्तिधाम की 300 मीटर बाउण्ड्री वाल का निर्माण
- अयोध्या बस्ती में सीमेंट क्रांक्रीट का मार्ग निर्माण
- मीट मार्केट शापिंग कॉम्पलेक्स का निर्माण
- सब्जी मण्डी का निर्माण, बड़ा बाजार
- शापिंग कॉम्पलेक्स का निर्माण (पेट्रोल पंप के पास)
- चिल्ड्रन पार्क, मंगल भवन निर्माणाधीन
- फागिंग मशीन द्वारा मच्छर नियंत्रण
- 2007 में नगरपालिका को कम्प्यूटरीकृत करवाया गया
- संजय वार्ड सांस्कृतिक भवन का निर्माण
- सुनार नदी के घाटों को एक दूसरे से जोड़ने का कार्य जारी

अध्यक्ष

जवाहरलाल राय
मुख्य नगरपालिका अधिकारी

बलराम दु
उपाध्यक्ष

एवं समस्त पार्षदगण, नगरपालिका परिषद, हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

अंक-1
2000

— संपादक —

डॉ. एम.एम. पाण्डे

सेवानिवृत, विकासखंड शिक्षा अधिकारी

हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

नगर पालिका परिषद, हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

गृहस्थ संत
पं.देव प्रभाकर जी शास्त्री 'दद्दा जी'
जिनके पावन कर कमलों द्वारा 'बुंदेली मेला' का भव्य शुभांरभ दि. 2.3.08 को हुआ।

अनुक्रमणिका ...

श्री पुष्पेन्द्र सिंह जी हजारी

जिनके मानस में ''बुंदेली मेला'' का नक्शा समाया हुआ है जिसे वे निरंतर लोकरंजक एवं लोकप्रेरक बनाने में क्रियाशील है।
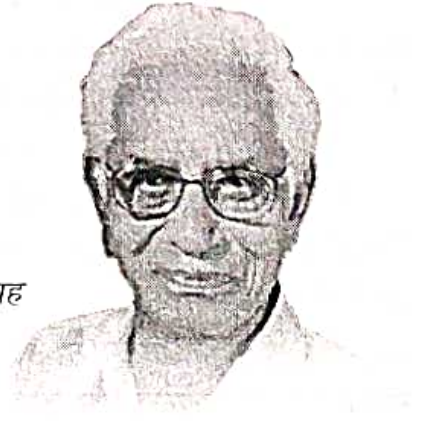
लोक संस्कृति की पहचान उसकी समशीला इकाई के रूप में होती है । यह समशीला इकाई अपनी सैकड़ों रंगतों में अभिव्यक्त होती है । जिस तरह'कोस-कोस पर बदले बानी, तीन कोस पर पानी' उसी तरह लोक संस्कृति की आंचलिक बुनावट में स्थानिकता का भी महत्व होता है । बुंदेलखण्ड की अपनी भू-भौतिक संरचना है, उसकी अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अस्मिता भी है - वह अपनी समग्रता में अपनी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत करती है । बुंदेली अंचल की संपूर्ण निर्मिति में छोटी-छोटी सांस्कृतिक छटाओं में भी अपनी भूमिका प्रस्तुत की है। बुंदेलखण्ड के लोक जीवन और लोक व्यवहार के साथ उसकी लोक चेतना को आधार बनाकर अनेक तरह के उपक्रम किये गये हैं - और किये जा रहे हैं । बुंदेली केन्द्रित अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन विभिन्न क्षेत्रों में संपन्न हो रहे हैं । इसी श्रृंखला में हटा (दमोह) में आयोजित बुंदेली मेला अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निर्मित कर चुका है । यद्यपि इस आयोजन का यह दूसरा वर्ष है, किन्तु इसकी प्रस्तुतियां और इसकी लोक प्रियता इसके महत्व को रेखांकित करती हैं । यह आयोजन बुंदेलखण्ड क्षेत्र की सांस्कृतिक विविधता को अपनी स्थानिक बनक और अपनी स्थानिक ठनक में प्रस्तुत करके बुंदेली क्षेत्र के सांस्कृतिक वैभव की बहुवर्णी उजास को ही व्यक्त करता है । इस मेले की मुख पत्रिका के रूप में हम इस स्मारिका /पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं । यह स्मारिका मात्र मेले की हलचलों का दस्तावेज न रहे, यह बुन्देली संस्कृति की ध्वजावाहक भी बने - इसलिए हमने इसे बुन्देली संस्कृति के विमर्श का मंच बनाने का स्वप्न संजोया है । हम चाहते हैं कि हमारा प्रयास इस स्मारिका के माध्यम से स्थानिक विशेषताओं के उद्घाटन के साथ ही समग्र बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति और लोक चेतना का प्रकटन कर सके । हम यह भी चाहते हैं कि जब सम्पूर्ण विश्व में लोक के लुप्त होने की प्रबल आशंकाये ही नहीं प्रगट हो रही हैं ,बल्कि अनेक लोक संस्कृतियां नष्ट हो गई हैं । वे स्मृति शेष भी नहीं है । ऐसे लोक संस्कृति विरोधी समय में हम कुछ ऐसा करें, जिससे हम अपनी प्राणवाहिका लोक संस्कृति के कतिपय प्रसंगों को स्मृति दोष होने से बचा सकें, न केवल बचा सकें,बल्कि इनकी परंपरा को अनेक आधुनिक माध्यमों के संयोग से अक्षुण्य रखकर उन्हें गतिशील भी बनाये रखें ।

प्रस्तुत स्मारिका के वस्तु चयन में यह दृष्टि निरंतर सक्रिय रही है कि बुन्देली के लोक का बहुआयामी व्यक्तित्व इस स्मारिका के माध्यम से प्रकट हो सके । इसमें बुंदेली लोक समाज, विभिन्न लोक व्यवहार, बुन्देली लोक कलाओं के विभिन्न अछूते पथ और बुन्देली साहित्य के कतिपय सार्थक प्रसंगों को हमने समेटने का प्रयास किया है, हमारी यह भी दृष्टि रही है कि हम हटा और दमोह के आस-पास के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और कलात्मक वैभव को शब्दों में ढाल सकें, इसमें स्थानिक विशेषताओं के साथ बुन्देली संस्कृति के बृहत्तर आशयों को समेटकर इसे एक वृक्ष रूप दिया है , जड़ों से लेकर वृक्ष की फलभरण तक की यात्रा स्मारिका की वस्तु चयन यात्रा है । हमारी यह भी दृष्टि रही है कि हम सृजन-संधान में अधिक गवेषणात्मक हों - अधिक प्रमाणिक हों ताकि हम एक जीवन्त यथार्थ को उसकी यथा तथ्यता में प्रकट कर सकें । इस तरह की रचनायें इस स्मारिका में रखी गई हैं, जो अपनी प्रमाणिकता में परिपुष्ट हैं ।

हमारा यह प्रारंभिक और प्रथम प्रयास है- इस स्मारिका को इस रूप में आप तक पहुँचाने में हमें जल्दबाजी करना पड़ी इसलिये बहुत संभव है कि जिस रूप में हमने इसे आकल्पित किया था, उस रूप को अभी यह प्राप्त न कर पाई हो किन्तु यह तो निश्चित है कि यह हमारी दृष्टि और हमारे दृष्टिकोण को तो प्रस्तुत कर ही रही है। आगामी अंकों में हम और सशक्त रूप में उजागर हो सकेगें ॥ हमारा एक आग्रह यह भी है कि हम बुन्देलखण्ड और बुन्देली के प्रति अधिक आत्मीय हों - अधिक उत्तरदायी हों - अधिक संवेदनशील हों। बुंदेली की ठसक और कसक, बुंदेली की कहन और रहन, बुन्देली की मिठास और खटास को हम राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्त कर सकें, इसके लिए जरूरत है अपनी धरोहरों के प्रति ईमानदारी से समर्पण की। बुन्देली बोली के व्यवहार में हम झिझकें नहीं, बल्कि इसके प्रयोग में आत्म गौरान्वित हों इसे घर-घर में व्यवहृत करें ताकि हमारी आगामी संतानों के माध्यम से यह अपने प्रभाव को सुरक्षित रख सकें। हम अपने प्रयासों से यह भाव यदि समग्र बुन्देली अंचल में जगा सके, तो यह हमारी बड़ी उपलब्धि होगी।

स्मारिका के संयोजन, संपादन, प्रकाशन में इसके लेखकों, कवियों का योगदान तो है ही, और मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रतिष्ठित हजारी परिवार हटा क्षेत्र के लिए प्रकाश स्तंभ एवं ऊर्जा स्त्रोत रहा है। चाहे देव गौरीशंकर जी का मंदिर निर्माण हो, चाहे बालाजी मंदिर में मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा हो, चाहे सुनार नदी पर हजारीघाट का निर्माण हो, ये सभी चिन्ह हजारी परिवार की कीर्ति पताका फहरा रहे हैं। इसी प्रसंग में हजारी वंश के कुलदीपक प्रिय **पुष्पेन्द्र सिंह** से मैनें बुन्देली संस्कृति के संवर्धन एवं शोध के लिए चर्चा की, जिसका समर्थन भाई **मानवेन्द्र सिंह हजारी** ने भी किया, जिसका प्रतिफल **"बुंदेली मेला"** हम सबके सामने हैं।

पत्रिका का मुद्रण अल्प समय में करके श्री नरेश गुप्ता जी मुद्रक जबलपुर ने संपादक एवं प्रकाशक पर कृतज्ञता ज्ञापित करने का बोझ लाद दिया है, उनके मनोयोग, तत्परता और लगन की सराहना करने में शब्दों का टोटा पड़ गया है। स्मारिका की रचनाओं को मुद्रित करने में नगर पालिका के **श्री राजेश व्यास, कु. रेनु खरे, दिलीप सेन** ने विशेष सहयोग किया है, जिसके लिए संपादक कृतज्ञ है।

छायांकन का समस्त कार्य प्रिय मनोज जैन ने पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पन्न किया, वे धन्यवाद् के पात्र हैं।

भवदीय

एम.एम. पांडे

संपादक

बुन्देली आस्था के जागृत प्रतिमान

(डॉ. देवेन्द्रनाथ पंड्या)

"देव गौरीशंकर"

हटा नगर की उत्तर दिशा की ओर स्थित देव गौरीशंकर का पंचायतन शैली में निर्मित देवालय समस्त बुन्देलखंड भूभाग में अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक गरिमा के लिए विख्यात है। 8 वीं से 12 वीं शताब्दी के मध्य संपूर्ण डाहलमंडल अर्थात गंगा और नर्मदा नदियों के बीच की भूमि शिव आराधना के उद्घोष से गुंजायमान थी। गोर्गीमठ के प्रभाव से गुहावासी शैव संप्रदाय के साधु सद्भाव शंभु ने शैव मत का वयापक प्रचार किया, फलस्वरूप त्रिपुरी के (तेवर–जबलपुर) कल्चुरी वंश के प्रतापी नरेश युवराज देव द्वितीय ने गोर्गीमठ के साधुओं को तीन लाख गांवों का भिक्षादान किया। शैवमठों की धर्म–व्यवस्था "विनय राज्य" कहलाती थी, इस धर्म को मालवा, चंदेरी, त्रिपुरी, बिल्हेरी, इत्यादि साधना स्थलों पर राज्याश्रय मिला। गोर्गीमठ के साधु सद्भाव शंभु का उल्लेख विकम संवत 1183 के मल्कापुरम (कर्नाटक) अभिलेख में मिलता है। दक्षिण के अमरेश्वर मंदिर में खुदे हुए हलायुध स्तोत्र में इस मठ का उल्लेख है। (ए.पी. ग्राफिका इंडिका खंड 25पृष्ठ 175) इस देवालय में भक्तों के अंतर्मन की प्रार्थना का सुफल देने वाले शिव–गौरी की मानवाकार प्रतिमा उमालिंगन मुद्रा में स्थापित है। वृषभारूढ़ इस देव प्रतिमा देव गौरीशंकर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए द्वार पर दर्शन की प्रतीक्षा में ग्रामीण भक्त समवेत स्वर में गीत गाते हैं, जिन्हें बुन्देली में बम्पुलिया कहते हैं, सरल भाव से भैरव से प्रार्थना करते हुए निम्न उद्‌गार व्यक्त किये जाते हैं –

"दरस की बेरा भई रे, बेरा भई रे पट खोलो छबीले भैरव लाल हो,

दरस की अरे हो..........."

मंदिर की यह मानवाकार प्रतिमा दक्षिण भारत के शैव आंदोलन से प्रभावित होकर निर्मित की गई है। भक्ति की सगुण साधना के प्रभाव से शिव की विभिन्न रूपों में जैसे उमालिंगन, कल्याण सुन्दर, हरिहर, नटराज इत्यादि की प्रतिमाऐं एवं विशाल प्रसिद्ध मंदिरों का निर्माण किया गया। इन्हें पल्लव एवं चोल राजाओं ने बनवाया था। देव गौरीशंकर की वृषारूढ़ 'उमालिंगन' मुद्रा में स्थापित प्रतिमा अपने अलंकृत धवल स्वरूप एवं जीवन्तता के लिए समस्त बुंदेलखंड में पूज्य है। शिव संकल्पात्मक अनुभूति से प्रेरित होकर जिस सती साध्वी नारी के चिता दहन स्थल पर शिव का यह 'ऐश्वर्य प्रसाद' निर्मित हुआ है वास्तव में उसके कुल और वंश का जीवन धन्य हुआ है। शायद पैंसठ वर्ष पूर्व हटा नगर के तुलसी चित्रकार के यहां जो तैलचित्र रखा था वह कीर्तिशेष ठाकुर प्रतापसिंह हजार का था जो देव गौरीशंकर स्थानक के निर्माण के प्रेरणा स्त्रोत थे। जिस तरह माँ भागीरथी काशी में उत्तरगामिनी है तथा जिसके अमृतमय जल से बाबा विश्वनाथ का अभिषेक होता है उसी तरह की इस नगर की उत्तर प्रवाहिनी सुरसरिता सुनार के पवित्र जल से गौरीनाथ का अभिषेक होता है, अतः इस हटा नगरी को उपकाशी का सम्मान प्राप्त हुआ। बाबा विश्वनाथ काशी के संरक्षक तथा जीवों के मोक्ष दाता हैं, उसी प्रकार भगवान गौरीनाथ इस नगर की समृद्धि और विकास के लिए अपने उत्तरदायित्व के पद का निर्वहन करते हुये मालगुजार भी कहलाये। प्रमाण स्वरूप लावनी छनद की खड़ी रंगत में अपनी पहली टेक में निम्न पंक्तियाँ हैं, पं. गोविन्दराम हिंगवासिया ने लिखा है –

"हटा नगर काशी का टुकड़ा
ऐसा कहते हैं नर, नार।
"जहां बिराजे गौरीशंकर,
सोलह आना माल गुजार।।"

मंदिर के दक्षिण पथ पर स्थापित सिंह–द्वार दक्षिण भारत में प्रवर्तित शैव मत के स्वरूप "शैव सिद्धांत" के प्रवेश का स्वागत करता है। भक्ति आंदोलन का सूत्रपात आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से हुआ और धीरे–धीरे उत्तर भारत के धार्मिक संप्रदायों को प्रभावित करता रहा, राम और कृष्ण की व्यापक उपासना पर इस भक्ति आंदोलन का प्रभाव है। कहा गया है कि "भक्ति द्राविण ऊपजी लाए रामानंद –"

इस आंदोलन के प्रवर्तक शैव सिद्धांती साधु थे जो 'नायनामार' कहलाते थे। इन ने शिव के भक्ति गीतों की काव्यात्मक सृष्टि की जिनमें शिव के प्रति अमन्य भाव से आत्मसमर्पण परिलक्षित होता है। बुन्देली लोक जीवन में शिव के प्रति अनन्य भाव से

समर्पण के विविध आयाम दिखाई देते हैं, इन लोकगीतों में काव्यात्मक सौंदर्य भले ही न हो किन्तु आत्मगत समरसत्ता का सौंदर्य का अनूठा सम्मिश्रण शिव के प्रति अर्पित जनजीवन की प्रार्थनायें बम्बुलिया गीतों मे प्रकट हुई।

सिंह द्वार से प्रविष्ट होने वाली शैव सिद्धांत की दार्शनिक अवधारणाओं में पशुपति और पाश की तात्विक विवेचना समाहित हैं, जिसमें शिव को पति जीव को पशु और जीव के सांसारिक बन्धन को पाश कहा गया है। यह शैव मत की त्रिपदार्थ वाली वह धारणा है जो शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करती है। शैव सिद्धांत मत ने इन तीन अनादि पदार्थों की सत्ता को स्वीकार करते हुये जीव की सत्ता को अनादि माना है, जीव की सत्ता का शंकराचार्य ने स्वतंत्र न मानते हुये उसे परब्रम्ह का अविच्छिन्न अंश मानते हुये 'अयमात्मा ब्रम्ह' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। शैव सिद्धांत दर्शन पशु अर्थात जीव की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करता है, एवं यह मानता है कि मुक्ति के बाद जीव की सत्ता का लोप नहीं होता। अतः बुन्देल खंड का यह देव–प्रतिष्ठान जीवन की अमरता का संदेश देता है यहां भक्त शिवमय होकर भी भक्ति साधना के द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा करता है।

माधवाचार्य ने सर्व दर्शन संग्रह में त्रिपदार्थवाद का उल्लेख करते हुये कहा है – "पति पशु पाश भेदात त्रयः पदार्थ इति"। शिव के साथ गौरी आधार शक्ति के रूप अवस्थित है जिसका कभी निरोधान नहीं होता। शिव की विशुद्ध ज्ञानात्मक स्थिति पराशक्ति है। गौरी के रूप में पराशक्ति विद्यमान है, वैसे शिव की पांच शक्तियां है यथा– परा, आदि, इच्छा, ज्ञान ओर किया। गौरीशंकर की युगल प्रतिमा पंच शक्ति संपन्न शिव का प्रतीक हैं। अतः पंचाक्षर मंत्र का जाप और पंचमुखी महादेव की आराधना प्रचलित हुई। पराशक्ति से जीवन मुक्ति की कल्पना प्रस्तुत करते हुये कवि निराला ने कहा है–

**"मरण को जिसने वरा है
उसी ने जीवन भरा है
"परा" भी उसकी–
उसी के अंक सत्य यशोधरा हैं"**

शिव और गौरी की युगल प्रतिमाऐं जिनका निर्माण नेपाल की तराई बंगाल और विंध्या क्षेत्र में किया जाता था, अध्यात्मिक दृष्टि से ऐसी प्रतिमाऐं पुरष एवं प्रकृति के लीलामय सामरस्य का प्रतीक हैं (सोशल फंक्शन ऑफ आर्ट–राधा कमल मुखर्जी पृष्ठ 115,116) मानवाकार मूर्तियों का निर्माण पद्मपुराण की उस कथा का विपर्यय है जिसमें दो बार शिव को शापित करते हुये कहा गया है कि विश्व में शिव की उपासना केवल लिंग रूप में ही होगी अतः इस धारणा को विश्वासनीय माना जा सकता है कि शिव के व्यक्तित्व विकास में जनविश्रुत सृष्टि एवं प्रजाति विकास के आधार भूत जन देवता का प्रभाव है। प्रजनन से संबंधित प्रतीक उपासना लिंग मूर्तियों के चल समारोहों के रूप में मध्य एशिया में प्रचलित थी।

शिव के भक्तपरक गीतों का संकलन मेयकण्डदेव ने शिवज्ञान बोधम् ग्रंथ में किया है। जिसे कई विद्वान रौखआगम की अनुकृति मानते हैं, शैव सिद्धांत मत के प्रमुख ग्रंथ शिवज्ञान बोधम् शिवज्ञान सिद्धि और शिवप्रकाश हैं। जिनमें ईश्वर साक्षात्कार ईश्वर जीव संबंध जीव की अवस्थाऐं आदि का उल्लेख है। "शैव सिद्धांत फिलासफी" क`लेखक 'जॉन पियेट' का मत है कि शिव ज्ञान बोधम् काव्य ओर दर्शन का अभूतपूर्व संयोग है जो विश्व साहित्य का अमूल्य रत्न है। भक्ति का आलम्बन इष्ट के रूप में शिव और शिव की साकार प्रतिमाओं से शिव के सगुण रूप की उपासना संभव है। दक्षिण के संतों का भक्तिगान में 'सायुज्य मुक्ति' का प्रावधान है अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिव की प्रतिमाओं का दक्षिण में रूपांकन हुआ तथा राजराजेश्वर, ब्रहदेश्वर और अमरेश्वर जैसे शिव मंदिरों में प्रतिष्ठित किया गया। बुन्देलखंड के लोकमानस में निहित् शैव चेतना भक्ति के उद्वेलन में गौरी और शिव के प्रति समर्पित है अतः अनुग्रह की अनिर्वाचनीय भाव दशा का सूक्ष्म तादात्म दक्षिण और बुन्देलखंड के आघ्यात्मिक संबंधों में स्थापित हो जाता है।

वास्तव में शिव देवता को समुचित व्यक्तित्व प्रदान करने का श्रेय उन द्रविण प्रजातियों को है जो पश्चिम एशिया से लेकर दक्षिण भारत तक फैली हुई थी। पुराणोत्तर काल तक निर्धारित शिव उपासना का स्वरूप पुराकाल से प्रारंभ होकर आर्यो के रूद्र संबंधी प्रार्थना को समाविष्ट करते हुए ईसा से 5000 वर्ष पूर्व की सुमेरियन एवं सिंधु सभ्यता की उपासनाओं से संबंध स्थापित कर लेती है। मोहन जोदड़ो में प्राप्त पशुपति की मुद्रा–व्रात्यों की योग साधना मध्य एशिया की लिंग उपासना एवं पर्वतीय जातियों के स्थानीय देवताओं का सम्मिश्रित व्यक्तित्व शिव की विभिन्न उपासनाओं में देखा जा सकता है। डॉ. सुनीति कमार का मत है कि द्रविण जातियां भूमध्य सागर के कीट द्वीप से मध्य एशिया होती हुई भारत में आई ओर उन्होंने मातृदेवी वृषभपूजा त्रिदेव कल्पना एवं पशुपति आराधना को सामाजिक जीवन में स्थापित किया, द्रविणों का

आगमन बलोचिस्तान के रास्ते से हुआ प्रमाण स्वरूप वहां की ब्राहुई भाषा और तमिल एक ही परिवार की भाषाऐं हैं जिनके शब्दार्थो में समानता है। पुराभारतीय सभ्यताओं में परम सत्ता के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था उनमें से कुछ शब्द दक्षिण भारत में शिव के लिए प्रयुक्त होते हैं। फादर हेरास ने मोहन जोदड़ो में उपलब्ध सीलों के संकेताक्षरों को समझने का प्रयास करते हुए तमिल भाषा मे शिव महान देव से संबंधित पुरातन नामों की सूची दी है जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है, इस लेख के उपसंहारात्मक संदर्भ में शिव के पुराभारतीय नामों की सूची प्रस्तुत है जिसका संबंध मोहन जोदड़ो के अभिलेखों से है :–

1. **इरूवन–** एकमेव द्वितीय नास्ति–परमेश्वर
2. **एनमइ–** दक्षिण के राज्यों में यह नाम शिव के लिए प्रचलित है।
3. **विदुकन–** वर्तमान में यह नाम शिव लिए प्रयुक्त होता है।
4. **पेरानोर नालविद–** ईश्वर दक्षिण में पेरूमाल शब्द सर्व प्रचलित शिव का नाम है।
5. **तांडवनइर नालमरम–** तांडवन चार विटपों के मध्य वन में तांडव नृत्य करते हुए शिव हैं यहां शिव के तांडव नृत्य की कल्पना की जा सकती है।

(हिस्ट्री एण्ड फिलासफी ऑफ लिंगायत रिलीजन एम.आर.साखरे पृष्ठ–990)

अतः शिव देवता के व्यक्तित्व की संपूर्णता का संधारण द्रविण सभ्यता के विकास क्रम में परिलक्षित होता है। हटा नगर का विश्रुत शैव साधना केंद्र देव गौरीशंकर मंदिर दक्षिण ओर उत्तर भारत की साधनाओं का संधिस्थल है। देव गौरीशंकर जीवन प्रदान करने वाले हमारे माता–पिता हैं, स्नेह देने वाले बंधु एवं मित्र हैं। ज्ञान के प्रदाता हैं, समृद्धि और वैभव से मानव जीवन को परिपूर्ण करने वाले देवाधिदेव महादेव हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या दृव्यं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम् देव देव।।

"बेटी को माँ की सीख"

नैन पुतरिया सौन चिरइया, कुलना दाग लगइयो।
हँसी खुसी सें जाव सासरें खूब प्रेम सें रइयो।
कैबे खों रैगई हमाई पै हो गई पराई।
फेर–फेर कें हात भौत बिध बेर–बेर समझाई।

जौ लों साँस सीख अनुसुइया की मन सें अपनइयो।
सास सुसर सजन की करियो प्रेम भाव सें सेवा।
दूद करूला रोजइँ कर हौ पैहौ मुकती मेवा।

सपनिन में लौं कबऊँ काऊ सें करें बोल न कइयो।
खेलत कूदत इतै फिरत तीं उतै न फिर पै हौ।
मरजादा की ओढ़ चुनरियाँ घर के भीतर रै हौ।

जौइ फरक ससरे मयके में ईखों भूल न जइयो।
दिन ऊरे लौं इतै सो उततीं उतै न ऐसौ करियो।
बिना जगाएँ मुरगा बोलें भुनसारे उठ परियो।

परियों पाँव बड़न बूढ़न के उनसे आसिष पइयो।
घर कौ काम लगन सें करियो कैबे ना रै जाबै।
ऐसें रइयो पुरा परोसी रतन जान पा पाबै।

सबसें पैलें इतै खातती उतै बाद में खइयो।
एक बात की खबर राखियौ दुःख खों सुकव समझियो।
रैहौ बनीं सबई की प्यारी धरम करम ना तजियों।

दोऊ कुलन कौ नाव उठइयो जियत जुगन लौं रइयो।
अंत समय तक पैरें रइयो लली लाज कौ गानों।
कात शिवाजी अमर अमोलौ दुनिया भर कौ जानों।
पनमेसुर मानियो पती खों जीवन सफल बनइयो।

गीतकार

डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'
नारायण पुरा (गुरसरांय)
झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देलखण्ड के लुप्तप्राय गहनें

(डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक')

बुन्देलखंड यानि यमुना से लेकर नर्मदा और चम्बल से लेकर टोंस नदियों के बीच का भूभाग भारतवर्ष के मध्य में स्थित है। उपजाऊ मैदानों, ऊंचे–नीचे सुन्दर पहाड़ों, घने जंगलों और छोटी–बड़ी अनेक नदियों से भरपूर इस भूखंड की प्राकृतिक शोभा जितनी अनूठी है, उतनी ही विशिष्ट इस भूभाग की लोक संस्कृति है। यहाँ की प्राकृतिक बनावट और परिस्थितियों के अनुकूल ही यहां का खान–पान, भाषा–बोली, रहन–सहन, रीति–रिवाज, वस्त्राभूषण आदि परम्परागत रूप से दर्शनीय व उल्लेखनीय रहे हैं, लेकिन आज वे अतीत की बात बन कर रह गयें हैं। यहां हम बुन्देलखंड में पहने जाने वाले उन गहनों का जिक करेंगे जो धीरे–धीरे परिस्थितियों के बदलने से लुप्त होते चले गये। अनेक गहनें तो ऐसे हैं जो अब देखने को भी नहीं मिलते।

लगभग पचास वर्ष पूर्व तक यहां के नर–नारियों में जिन गहनों को पहनने का रिवाज था, हम उनके संबंध में नख से सिख तक दृष्टिपात करेगें। संपन्न घरों की महिलायें पूरे शरीर पर पर्याप्त मात्रा में समय–समय पर गहनें पहन कर अपने रूप को द्विगुणित करने का जो प्रयास करती थीं वह निम्नांकित पंक्तियों में दृष्टव्य है।

गानों मुलक मरे कौ पैरें, परें न कौनऊँ फेरें।
जो देखत रै जात चितउत, गुइयाँ सबरी धेरें।
गानों अजब मोहनी डारै, फिर–फिर तकता हेरें।
दूनी होत रूप की आभा, 'नारायण' तक फेरें।

पैरों (पॉवों) के गहने –

पैरों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए महिलाऐं पैर के अंगूठों में ठोस या पोले अथवा अनौटा पहना करतीं थीं जिन पर जंजीर की कारीगरी और रत्नों की छोटी–छोटी कलसियॉ बनी होती थीं। छिंगरी या सबसे अंत की छोटी अंगुली में छिंगनियॉ पहनी जाती थीं और बीच की तीन अंगुलियों में बिंदली, कटीला, मछरियॉ, बिरमिदी आदि अनेक प्रकार के बिछिया महिलाओं द्वारा पहने जाते थे। पंजे पर पांवपोश बहुत ही कलात्मक आभूषण होता था जो जंजीरों से एक ओर अड़िया को घेरकर बंधा होता था तो दूसरी ओर अंगूठे के छल्ला व चारों अंगुलियों के बिछियों से कुंदों द्वारा बंधता था। पैरों का यह श्रंगार शादी–व्याह, तीज–त्यौहारों या विशिष्ट अवसरों पर सहज देखा जा सकता था। नित्य के पहनावे में केवल बीच की तीन अंगुलियों में ही बिछिया पहने जाते थे। कुछ शौकीन महिलाऐं पोले बिछियों में (बिंदलियों में) कंकड़ डालतीं थीं और कुछ छोटे–छोटे घुंघरू डालती थीं जो मधुर आवाज करते थे। बिलवारी गाती हुई महिलाओं के स्वरों में आज भी उसका आभाष मिलता है –

'ककरीलौ पथरीलौ तोरौ देस सजनवा,
मोरे बाजन बिछिया घुर जैहें।'

बुन्देलखंड के अधिकांश भाग में पैरों की अड़ियों में पहने जाने वाले गहनों में पैजना सबसे ज्यादा प्रचलित थे, जो सभी वर्गों की महिलाऐं पहना करतीं थीं। पैजना चॉदी, गिलट या भूरा तांबे से बनाये जाते थे जिनका बजन सामान्य रूप से एक पाव से लेकर दो किलो तक रहता था। बनावट के अनुसार पैजना कई प्रकार के होते थे। जैसे ऐंठी के, इमरती के, छीताफली, दतियासाही, छतरपुरी आदि। अधिकांश पैजना जहाँ ढाले जाते थे, वहीं कुछ पैजना गढ़ता अर्थात गढ़कर, यानि चॉदी का पत्ता पीट कर उस पर कलम से डिजायन बना कर तथा अंजीरा और रवार को जोड़कर बनाये जाते थे। पैजना पोले होने के कारण कुछ अति शौकीन औरतें उनमें कंकण डाल लेतीं थीं जिनकी आवाज के छमाके दूर सुनाई देते थे।

'तोरे मधुर पैजना बाजें, गोरे पग में राजें।
'भरतू' परें काऊ के ऊपर, मादों कैसी गाजें।'

पैजना लटकता हुआ अड़िया में ढीला पहना जाता था। इनका प्रचलन उत्तरी और पश्चिमी बुन्देलखंड में अधिक था।

कुछ महनतकश और पिछड़ी जाति की महिलायें चुल्ला, घुन्सीं अथवा गूजरी पहनतीं थी जो अड़िया में कसे रहने वाले गहनें थे। राजस्थान ओर मालवा से लगे हुए क्षेत्रों में चिकने कड़े, टालें या जेरें भी पहनी जाती थीं। बुन्देलखंड के दक्षिणी पूर्वी भागों में तोड़ा, चूरा व पायजेब पहनने का अधिक रिवाज था। तोड़ा व पायजेब अकेले–अकेले भी पहने जाते थे और कुछ महिलायें दोनों का सैट इस प्रकार पहनती थीं कि नीचे तोड़ा बीच में पायजेब तथा सबसे ऊपर चूरा, इससे पूरी अड़िया भर जाती थी। तोड़ा की बनावट ऐंठी के पैजना से मिलती हुई होती थी जिनमें दो–दो गुच्छे बगल में लगे होते थे। पायजेब अर्द्धगोल छोटी–छोटी गेंदों को जोड़कर बनतीं थीं और चूरा छोटे–छोटे गोल रवों से बनते थे और

बजन में अपेक्षाकृत कम होते थे।

इनके अलावा झांझें ओर लच्छा पहनने का रिवाज भी कुछ समय तक चला। इन्हें ठकरास और मुसलमान महिलाओं न विशेषकर अपनाया था। लच्छों के साथ लहरियादार डिजायन में बनी बॉके या पट्टेदार डिजायन में बनी छैलचूडी भी पहने जाने लगीं थीं। इसके बाद डिजायनदार पट्टी में नीचे बोरा गसकर बनाये गये अनोखा पहनने का चलन हुआ। धीरे–धीरे आधुनिकता के प्रभाव से ऐसे गहनों का चलन बढ़ा जो देखने में सुंदर और बजन में कम हों। अतः अनोखा के बाद पान–चिड़ी की बोरा गसी हुई पायलों का चलन तेजी बढ़ा जिन्हे अब प्रायः विवाह के चढ़ावे में ही देखा जा सकता है। अब तो सारे बुन्देलखंड में देश के अन्य भागों की तरह पतली पायलें पहनी जाने लगीं हैं और अन्य गहनें अतीत में खो गये है। पहले यहॉ एक विशेष बात यह थी कि पॉवों में सोने के गहने पहनने का अधिकार केवल राजघरानों तक ही सीमित था।

पहले लड़के भी किशोरावस्था तक पांवों में गहनें पहनते थे। सादा गोल ठोस चूरा और कड़ियों को गूंथ कर बनाये गये तोड़ा बालकों को पहनाये जाते थे। अब भी कुछ घरों में एक दो वर्ष की उम्र तक केवल चांदी के चूरा लड़कों को पहनाये जाते हैं जो प्रायः दस्टौन के समय बालक के मामा या फूफा द्वारा लाने का चलन है।

हाथों के गहनें –

पुरानी पीढ़ी के लोग जानते होंगे कि यहां पुरूष व महिला दोनों ही हाथों में आभूषण पहनते रहे हैं। पुरूषों द्वारा हाथों में चूरा, कड़ा, छल्ला, मुंदरी आदि पहने जाते थें महिलाऐं हाथों की अंगुलियों से लेकर ऊपर बांह या बाजू तक अनेक प्रकार के आभूषण पहनती रहीं हैं। हाथ की अंगुलियों में जहां छाप, छल्ला, मुंदरी, पेंती पहने जाते थे वहीं हाथ के पंजों पर हथपोश पहना जाता था जो जंजीर से कलाई में बंधता था और अंगुलियों की मुंदरियों छलों में पतली जंजीरों से जुड़ता था। इनके नमूनें अब भी कुछ संपन्न घरों में देखने को मिल जाते हैं जो चॉदी के स्थान पर सोने के होते हैं। हथपोश बहुत सुन्दर और कलात्मक होते हैं जिनके बनाने वाले कारीगर गिने–चुने रहते आये है।

बुन्देलखंड की महिलाऐं कलाइयों में कॉच की जो चूड़ियां पहनती थीं उनमें काचारा, और अमरस या सुरक्का विशेष हैं। काचारा काली सादा चूड़ियों को कहते हैं जो विवाह के चढ़ावे का आवश्यक अंग सदा से रहा है। अमरस पीली और सुरक्का सादा लाल चूड़ियों को कहते हैं। ये दस्टौन के समय जच्चा सहित घर की सभी महिलाओं, मौजूद महिला रिस्तेदारों और पड़ोसनों को पहनाते थे।

कलाइयों के सोने, चांदी और गिलट के गहनें ठोस व पोले दो प्रकार के अधिक होते थे। ठोस गहनों में नीचट चूरा–चुरियां, पटेला, ऐंठी व इमरती की डिजायन के चूरा, छन्नी या बंगलिया(बंगरी), कंगूरों और कलसियादार कंगन, बेलचूड़ी, बतानें आदि होते थे। पोले गहनों में पुलगा चूरा, बगवॉ, ककना, दौरीं, नौगइई आदि होते थे। इनके अलावा कुछ गहनें जंजीरों या चैनों की सहायता से बनते थे जिनमें गजरा, गुंजें पौंचियॉ आदि थे।

बाहों या भुजाओं पर पहने जाने वाले गहनों में बोहदा चॉदी के ठोस, गोल व चिकने होते थे। बॉके या बॉकड़, बरा, डारें पोलीं होती थी। अक्षर के समान मोड़ कर बनाते थे। बाजूबंद ठप्पा की विभिन्न डिजायनों के बने होते थे जिन्हें मोटे मजबूत धागों में बरवा कर बांधा जाता था।

कमर के गहनें –

शरीर के मध्य भाग अर्थात कमर में भी गहनें पहननें का रिवाज रहा है जो अब बहुत कम हो गया है। पहले बुन्देलखंड में महिलायें सतलरा या पचलरा करदौना पहनती थीं जो आधा सेर से एक सेर वजन के होते थे। धीरे–धीरे बजन और लरों में कमी होती गई और तीन–चार लरों की हल्के बजन की करदौनी पहनी जाने लगीं। करदौना या करदौनी में बगल में विभिन्न डिजायनों के गुच्छे भी लटकाये जाते रहें है। अलग–अलग डिजायनों में बनने वाली करदौनियों को कमर पेटी, पट्टा, डोरा, डुलनियॉ, बिछुआ आदि नामों से विभूषित किया जाता था। बजन घटाने हेतु 10–12 तोले की हाफ करधोनी बनने लगीं जो साड़ी में हुक लगा कर पहनी जाती हैं और देखने में अधिक सुन्दर लगती हैं। हाफ करदौनी चॉदी की स्वर्ण पालिश वाली तथा रोल्ड–गोल्ड की भी बनती हैं जो ग्रामीण महिलाऐं अभी भी कहीं–कहीं पहनतीं हैं। अब सोने या चॉदी की करदौनी केवल केवल विवाह या विशेष अवसरों पर ही कुछेक महिलाऐं पहनतीं हैं। यहॉ छोटे बालक व बालिकाओं को भी पतली एक–दो लर की करदौनी पहनाई जाती रही हैं।

गले के गहनें –

मानव शरीर में गला एक ऐसा अंग है जिसमें सबसे अधिक प्रकार और डिजायनों के गहनें पहने जाते है। विभिन्न धातुओं के गहनों के अलावा गले में फूलों के हार अनाज व सूखे मेवों की

मालायें (जवारी) धागों और कांच के गुरियों की मालायें, मूंगा–मोतियों की मालायें आदि पहनने का चलन भी रहा है। बुन्देलखंड में बच्चा को दस्टौन के दिन जवारी पहनाने का विशेष चलन था जो जौ (जवा) के दानों, मखानों, छुहारों गरी के गोल टुकड़ों, सुपाड़ी, लोंग आदि से कई लरों के सुन्दर हार जैसी बनती थी, मगर अब चलन में नहीं है। विवाह के चढ़वे में काली पोत की छुटिया और तीन सोने के गुरियों से बनी तिवनी आवश्यक रूप से होती थीं जिनका चलन अब मिट रहा है।

गले में सोने चांदी के पुराने गहनों में सुतिया खंगोरिया ठोस ओर सबसे बजनदार होती थी जो आधा सेर तक की बनती थी। सोने की मुहरों से बनी टकयावर और चांदी के सिक्कों के गजरे भी बजनदार गहनें थे। बिचौली, ठुसी, तिदाना और गुलूबन्द सोने के फलों और गुरियों से बने गले में चिपके हुए पहने जाने वाले गहने थे। लल्लारी सोने के बड़े–बड़े गुरियों की जरीदार धागों में बरवा कर बनती थी जिसका चलन लगभग समाप्त हो रहा है। महरमाला में सोने से पोले गुरिया ऊपर की ओर सबसे छोटे से लेकर सबसे नीचे बड़े गुरियों को कमानुसार धागे में बरा जाता था। मटरमाला भी अब चलन से बाहर है। अनेक तारों से मिलकर बनाये जाने वाले हारों में सीतारामी, सतलरा, पचलारा, नौलखा आदि हार होते थे जरा अच्छे बजन के रहते थे। चैन या जंजीर अनेक डिजायनों की बनती हैं जो अभी भी चलन में हैं। कुछ घरों में बीजासेन (देवी) की पुतरिया पहनी जाती है। छोटे बच्चों को चन्दा–सूरज, हा, तविजिया, कठला, बगनखा, आदि पहिनाये जाते रहे हैं। पहले पुरूष भी गले में सेली, मोतियों के हार, गुंज, गोप, बगनखा, सांकर आदि पहिनते थे। अब केवल जंजीर ही चलन में है।

हम देखते हैं कि मानव शरीर में चेहरा या सिर सबसे महत्वपूर्ण अंग है जिसको देख कर ही उसे सुन्दर या कुरूप कहा जाता है। चेहरे को अधिक आकर्षक बनाने के लिए महिला और पुरूष दोनों ही आभूषणों या गहनों का प्रयोग करते हैं। गले के ऊपर नाक, कान ओर सिर पर जो आभूषण बुन्देलखंड में पहने जाते रहे हैं, यहॉं उनका परिचय दिया जा रहा है।

कानों के गहनें –

इस अंचल में कानों में महिलाओं द्वारा कन्नफूल पहनने का रिवाज बहुत अधिक था जो बारहों महिने भी पहने जाते थे। बजनदार कन्नफूलों (एक से दो तोला करीब) को साधने के लिये कनौटी पहनी जाती थीं। ज्यादा बजन से कई महिलाओं के कानों की लोंड़ियों तक फट जाती थी। अब कन्नफूलों का रिवाज समाप्त है। कन्नफूलों के बाद झुमकी पहनने का रिवाज बढ़ा था, वह भी कम हो गया है। उपरकना या कान के ऊपरी भाग में बालियां भी साथ में पहनी जाती थीं। पूरे कान में बालियॉं पहनने का रिवाज मुस्लिम महिलाओं में था। इनके अलावा ढारें, गुच्छा, ऐरन, कुण्डल भी पहने जाते थे। कुछ समय झाला पहनने का रिवाज भी रहा जिनमें एक के ऊपर एक तीन फल लटकते थे। अब अनेक प्रकार नये कान के गहने हल्के बजन क बनने लगे हैं। पहले पुरुष भी कानों में बारीं, मुरकीं, बिजली, लोगें, तरकियॉं और कुण्डल पहनते थे इसलिए बचपन में कनछेदन कराया जाता था।

नाक के गहनें –

नाक में गहने केवल महिलाऐं ही पहनतीं हैं। पहले गर्रादार (गर्रयाऊ) पुंगरिया हमेशा पहिनने का चलन अधिक था। बाद में डेमलकाट व नगदार पुंगरियां चलन में आई। अभी पुंगरियां ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं। इनके अलावा दुर, बेसर, दुलरी या नथनी आदि भी पहनी जाती थीं जो गाल पर टिकी रहती थीं अब विवाहों में हल्के बजन की नथनी कहीं–कहीं चढ़ाई जाती हैं। ये कभी कभार ही उपयोग की जाती हैं। अब नाक में छोटी सी कीलें पहनने का चलन है। शायद आगे वह भी मिट जाय क्योंकि अब लड़कियां जीन्स और शर्ट की पोशाक पहनने लगीं हैं जिसके साथ गहनें नहीं चलते।

सिर के गहनें –

सिर के ऊपर धारण किये जाने वाले गहनों में बीज, शीषफूल, सिरबैज, बेंदी, टीका या बूंदा, टिकुली, बंदियॉं, दावनी, झूमर, केकरपान, रेखड़ी आदि थे जिनका चलन धीरे–धीरे समाप्त हो गया है। अब केवल बिंदी और छोटी बेंदी (शादी में) चलन में है।

– (नारायण दास सोनी)
राजमहल के पास, टीकमगढ़
(म.प्र.) पिन–472001
फोन– 07683–240086

दमोह जिले की : पुरा सम्पदा
बुंदेलखंड के दीवाने नहीं, जानकार चाहिये

– हरिविष्णु अवस्थी

"कभी–कभी हम अपनी परम्परा, इतिहास अथवा जनश्रुति को इतना स्वीकार कर लेते हैं कि वास्तविकता से परिचित नहीं होना चाहते हैं। और उसके व्योरे में जाने में हमें आलस आने लगता है।" सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. डा0 कान्तिकुमार जैन का उपरोक्त कथन हम बुंदेलखंड वासियों पर पूरी तरह से खरा उतरता है। हमें अपने क्षेत्र, जिला अथवा बुंदेलखंड के इतिहास पुरातत्व, साहित्य, संस्कृति आदि संबंधी जो थोड़ी बहुत अधकचरी जानकारी है, वह हमारे लिए पर्याप्त है। यह संतोष ही हमें आगे कुछ करने अथवा जानने की दिशा में सबसे बड़ा बाधक है। हमारे दिमाग में कुछ करने का विचार इस संतोष के कारण उत्पन्न नहीं हो पाता है।

पूर्व पाषाण युगीन से नव पाषाण युगीन स्थल तक–

बहुत समय पूर्व कोजी खेड़ी, करिया खेड़ा, दमोह एवं सिंग्रामपुर में पूर्व पाषाण युगीन हस्तकुठार, विदारिणी तथा करिया खेड़ा के कुसमी नाले में प्राप्त विभिन्न प्रकार के औजार आदि सभी नेशनल म्यूजियम कलकत्ता की शोभा बढ़ा रहे हैं। हटा से लगभग पांच किलामीटर की दूरी पर स्थित हारट खास ग्राम में कुछ समय पूर्व एक सीमेंन्ट से बनी कब्र में से कुछ आरंभिक पुरा पाषाण युगीन औजार प्राप्त हुये थे। नरसिंहगढ़ में सोनार नदी घाटी की खोज में 'सीरिज–2' के औजार, कोपरा, व्यारमा नदियों के किनारे पाये गए पाषाण युगीन औजार तथा हटा और दमोह में पाये गए उपकरण 'इण्डियन म्यूजियम' कलकत्ता में संरक्षित हैं।

शैलाश्रय एवं प्रागैतिहासिक कालीन चित्र–

जिले में स्थित फतेहपुर में पातर नामक एक गहरी धारा के किनारे एक शिला है, जिस पर उभरे वर्ग और चित्र बने हुए हैं। चित्रों का रंग पक्का है।

शिलालेख–

हटा में सड़क के किनारे अनेक सती स्तंभ (सत्ती चीरा) हैं। इनमें कुछ में संवत् अंकित हैं।

कुण्डलपुर–

एक मंदिर के द्वार पर संवत 1757 वि का चौबीस पंक्तियों का शिला लेख लगा है। इसमें मंदिर की मरम्मत का उल्लेख है। प्राचीन नाम 'मंदिर तिला' दिया गया है। मंदिर परिसर में एक चबूतरे पर दो पद चिन्ह हैं। चबूतरे के अधोभाग में कुण्डलगिराय श्री श्रीधर स्वामी का शिलालेख है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि श्री श्रीधर स्वामी को यहीं निर्वाण प्राप्त हुआ था।

जटाशंकर–

यहॉं दो शिलालेख है जो संस्कृत तथा राजस्थानी में हैं तथा एक दूसरे का अनुवाद हैं। इसमें विश्वामित्र गोत्र के विजयपाल ने काल नामक महान योद्धा पर विजय प्राप्त की थी। इसमें विजयपाल के पौत्र हर्षराज तथा उसके पुत्र विजय सिंह के पराक्रम का वर्णन है।

पिपरिया–

फतेहपुर से दो किलोमीटर दूर स्थित है। यहां पांच स्मारक युद्ध स्तंभ हैं। इनमें युद्ध के दृश्यों का अंकन किया गया है। इन सभी पर लेख अंकित हैं जो आश्विन वदी शुक्रवार एकादश संवत् 1198 (सन 1141 ई.) के हैं।

ईश्वर मऊ–

चंदेल शासक भोजवर्म देव एवं सामंत वाघदेव संबंधी सूचना संवत् 1344 के शिलालेख से प्राप्त होती है।

ब्रम्हनी–

संवत् 1365 वि. के शिलालेख हम्मीरवर्म देव एवं उसके सामंत बाघदेव संबंधी जानकारी प्राप्त होती है।

रोंद(रोण्ड)

सुनार नदी के किनारे वि.सं. 1359 का बाघदेव सामंत के शासन काल का उल्लेख संबंधी शिला प्राप्त हुआ था। एक सती स्तंभ में सं. 1383 में महमूद शाह का उल्लेख है जो सन 1325 में दिल्ली के तख्त पर बैठा था।

सिंगोरगढ़–

किले में पहाड़ी की चोटी पर आठ पंक्तियों का शिलालेख

एक वर्गाकार पाषाण स्तंभ पर अंकित है जिसमें गजसिंह दुर्ग का उल्लेख है। जिससे प्रकट होता है कि दुर्ग का निर्माण गजसिंह प्रतिहार या परिहार द्वारा कराया गया था। शिलालेख में विजया दशमी संवत 1364 अंकित है।

बटियागढ़–

दुर्ग में सं. 1385 के सिलालेख में बटियागढ के तत्कालीन नाम 'बटिहाडिम' तथा स्थानीय हाकिम जल्लाल खोजा का उल्लेख है। इस संस्कृत लेख में खारापारा सेना उल्लेख होने से स्पष्टतः ई. सन् चौथी शताब्दी के समुद्र गुप्त के इलाहाबाद स्तंभ के शिलालेख के खारापारिक से मिलते जुलते हैं। एक अन्य स्थान पर एक दूसरा बड़ा शिलालेख खंडित स्थिति में है। इसमें चार पांच छंद हैं जिनमें सुल्तान महमूद उसके सिपहसालार जुलायी तथा स्थानीय हाकिम का उल्लेख है। इसमें दो बार तारीख दी गई है। अनुमानतः यह 1300 वि. के आसपास का है। सन् 1324 के एक फारसी शिलालेख में तुगलक सुल्तान गियासुद्दीन के शासनकाल (1320–25 ई.) में एक महल निर्माण का उल्लेख है।

सकोर–

गुप्तकालीन सपाट छतवाले मंदिर में संवत 1361 के एक तीर्थ यात्री का शिलालेख मात्र है।

बरी कनौरा–

ग्राम में अनेक सती स्तंभों के अतिरिक्त कुछ पाषाण खण्डों पर संवत 1342, 1350 तथा 1360 तिथियां अंकित हैं। जो योद्धाओं के स्मारक प्रतीत होते है।

दमोह–

प्राचीन किले में सन् 1383 ई. का एक फारसी लेख मिला था। एक अन्य फारसी शिलालेख में सन् 1480 में किले के पश्चिम द्वार के सामने वक्षभीत निर्माण कराने का उल्लेख है। तीसरा शिलालेख सं. 1470 का है जिसमें मालवा के अंतिम खिलजी बादशाह सुल्तान महमूदशाह का उल्लेख है। इस हिन्दी के शिलालेख में दमोह नगर में प्रचलित कुछ करों में छूट देने की घोषणा की गई है। संवत 1336 एवं 1341 के सती स्तंभो पर भी लेख उत्कीर्ण है।

हिंडोरिया–

नगर से दो किलोमीटर दूर एक निर्जन स्थान से वैशाख सुदी 3 गुरूवार संवत 1344 का शिलालेख मिला है। जो ईश्वर मऊ के नाम से जाना जाता है।

रनेह–

मुरहा नामक एक प्राचीन छोटे से भवन में एक शिलालेख लगा है जो अस्पष्ट होने के कारण पढ़ा नहीं जा सकता।

बोतराई–

यहाँ एक सती स्तंभ है।

चौपरा–

प्राचीन जैन मंदिर स्थित बड़ी मूर्ति के पादपीठ पर नरसिंह देव के शासन काल से संबंधित नौ पंक्तियों का शिलालेख है। जिस पर सम्वत 1313 लिखा प्रतीत होता है। इसी मंदिर की दीवाल पर एक अन्य शिलालेख है जो संवत् 1554 का है। इसमें माण्डवगढ़ (मांडू) के सुलतान ग्यासुद्दीन शाह का उल्लेख है।

बौद्ध स्मारक एवं प्रतिमाएँ–

हटा सोनार नदी के तट के स्थित है। नदी क पास ही जीर्ण–शीर्ण प्राचीन दुर्ग है, इसी नदी के किनारे के निकट स्तूपों के रूप में प्राचीन अवशेष विद्यमान हैं। गढ़ाकोटा से कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित बांसा तारखेड़ा मे भगवान बुद्ध प्रतिमा है। जो पूर्व मध्यकाल की है। मूर्ति की पाद पीठ पर शिलालेख अंकित है। इस उपलब्धि से यह प्रमाणित हो जाता है कि शताब्दी के बाद भी यहां बौद्ध धर्म प्रचलित था।

जैन स्मारक एवं प्रतिमाएँ–

कुण्डलपुर दमोह जिले का सुप्रसिद्ध जैन तीर्थ स्थल हैं। यहां कुल मिलाकर 58 दिगम्बर जैन मंदिर विद्यमान हैं। इनमें से तीस मंदिर वर्तुलाकार पर्वतश्रेणी पर स्थित है। शेष 18 मंदिर पर्वत श्रेणी के तल प्रदेश में वर्द्धमान सागर के तट पर स्थित है। पहाड़ी के उपर बने मंदिरों में सबसे प्राचीन एव विशाल मंदिर बीचों बीच स्थित है। इसमें लाल बलुआ पाषाण की विशालकाय जैन तीर्थकार की प्रतिमा विराजमान है। जिसे ऋषभनाथ की प्रतिमा कहा जाता है तथा जो बड़े बाबा के नाम से प्रसिद्ध है। कुंवरपुर ग्राम से प्राप्त तीन प्रतिमायें भी यहां विराजमान हैं।

कुंडलपुर के निकट रूकमणि मठ तथा बर्रट आदि स्थानों में भी कुछ जैन मंदिर हैं जो ध्वस्त हो चुके हैं। इनकी प्रतिमायें भी कुण्डलपुर के मंदिरों में प्रतिष्ठित हैं। ईसा की छटीं–सातवीं शताब्दी

की ऋषभनाथ की एक प्रतिमा के दोनों ओर पार्श्वनाथ की दो खड़ी विशालकाय प्रतिमायें है।

चोपरा–

नामक ग्राम में एक प्राचीन जैन मंदिर है। मंदिर में प्रतिष्ठित बड़ी मूर्ति के पादपीठ पर संवत् 1313 का नौ पंक्तियों का शिलालेख है। हिंडोरिया से दो किलोमीटर दूर स्थित निर्जन स्थान में अनेक प्राचीन मंदिरों के अवशेष तथा जैन तीर्थकारों की अनेक सुंदर प्रतिमायें हैं।

वैष्णव स्मारक एवं प्रतिमाएँ–

कुछ प्रतिमाएं फुटेरा ताल के पास एक चबूतरे पर संग्रहीत हैं। इनमें दो प्रतिमायें विष्णु की हैं। नोहटा की बाराह प्रतिमा भी यहीं पर है। कुछ वैष्णव प्रतिमायें कलेक्टर एवं पुलिस अधीक्षक के बंगलों के उद्यान की शोभा बढ़ा रहीं है।

हटा से लगभग बीस किलोमीटर दूर स्थित बरी कनोरा ग्राम में बारहवीं शताब्दी में निर्मित चैत्य में अनेक हिन्दु देवताओं की प्रतिमाएँ है। किसनगंज में एक प्राचीन राम मंदिर स्थित है।

कुण्डलपुर–

कुण्डलपूर में बर्द्धमान सागर के समीप विष्णु भगवान की खड़ी प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

हटा से लगभग दस किलोमीटर दूर स्थित लुहारी ग्राम में मठ शैली में निर्मित एक प्राचीन मंदिर है। हआ से तेरह किलोमीटर दूर मगरोन नामक ग्राम में दो प्राचीन मंदिर हैं जो गोंड शासकों द्वारा बनवाये बताये जाते हैं। हटा से तेरह किलोमीटर दूरी पर स्थित सकोर ग्राम में मराठाकाल में निर्मित हनुमान मंदिर है। सीतापुर में एक राम मंदिर तथा एक बिहारी जी का मंदिर हैं। रनेह में विष्णु प्रतिमा विद्यमान है।

नोहटा से बीस किलोमीटर दूर स्थित बनवांसा में भी एक प्राचीन विष्णु मंदिर होने के प्रमाण उपलब्ध है। हिंडोरिया में कई प्रतिमायें हैं। यहां कलचुरि कालीन मंदिर के अवशेष विद्यमान हैं। नृसिंह अवतार शेषधारी विष्णु की मूर्तियां श्री प्रताप नारायण ठाकुर के निवास के समीप खुले मैदान में है।

खमरिया मौजीलाल में विष्णु एवं हनुमान की खण्डित प्रतिमायें है। मध्यकाल ओर उसके बाद निर्मित वैष्णव मंदिर तो पूरे जिले में विद्यमान हैं।

शैव स्मारक एवं प्रतिमाएँ–

वांदकपुर–दमोह जिले का प्रसिद्ध शैव तीर्थ स्थान है। यहां विशाल शिवलिंग है। अन्य दो मंदिरों में नंदी एवं माता पार्वती की भव्य प्रतिमायें हैं। हटा से 17 किलोमीटर दूर स्थित बनगांव में कोपरा नदी के तट पर 10वीं–11वीं शताब्दी का विद्यमान है।

दमोह का फुटेरा तालाब पर शिव पार्वती की कलात्मक तरीके से उत्कीर्ण दो प्रतिमायें हैं। पहाड़ी पर स्थित जटाशंकर का मंदिर प्राचीन एवं प्रसिद्ध है। हटा में गौरीशंकर मंदिर मराठा कालीन विद्यमान है। बरी कनोरा में शिव पार्वती की प्राचीन प्रतिमायें है। मुहन्ना में 11वी–12वीं सदी का प्राचीन शिव मंदिर है।

प्राचीन शिव मंदिर, बरी कनौरा

नोहटा में 12वी शताब्दी का एक सुंदर शिव मंदिर है। पंचरण आकार का यह शिव मंदिर बहुत ही कलात्मक रूप में विद्यमान है। शिव की मूर्ति के साथ शिव लिंग भी यहां स्थापित है। सकोर में मढ़ा नाम से विख्यात स्थान में वृहद शिवलिंग एवं मंदिर के अवशेष हैं। जो निश्चित रूप से गुप्तकाल का है। सीतानगर में कोपरा एवं सोनार नदियों के संगम पर एक शिव मंदिर विद्यमान है।

नोहटा से बीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित बनबांसा ग्राम में गुप्तकालीन सपाट छत का एक छोटा सा शिव मंदिर विद्यमान है।

खमरिया मोजीलाल नामक ग्राम में पीपल के वृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर प्राचीन शिवलिंग विद्यमान है। तेदूखेड़ा से सत्रह कि. मी. दूर कोडल में कलचुरि कालीन शिव मंदिर हैं।

कुण्डलपुर में वर्द्धमान सागर तट पर स्थित 2 सपाट छत वाले गुप्तकालीन मंदिरों में से एक 'रावणानुग्रह' शिव की मूर्ति होने का उल्लेख कनिंगघम ने किया है। दमोह से साठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित नांद–चांद में कुडो नाला एवं पाटन नदी के संगम पर कनिंघम को कलचुरी कालीन मतंगेश्वर शिव का मंदिर मिला था। रनेह में सागर ताल के पास ग्यारहवीं शताब्दी के मंदिर के अवशेष

विद्यमान हैं। यहां गनेश एवं पार्वती की प्रतिमायें विद्यमान है। जिले के हर छोटे से छोटे गांवों से बड़े नगरों तक शिव पार्वती के मंदिर विद्यमान हैं। जिनमें कुछ प्राचीन एवं कुछ आधुनिक समय के हैं।

शाक्त स्मारक एवं प्रतिमायें–

हटा नगर में चण्डी देवी का प्राचीन मंदिर है। जो जन–जन की आस्था का केन्द्र है। हटा से लगभग इक्कीस किलो मीटर दूरी पर स्थित बरी कनोरा में चण्डी देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

हिण्डोरिया में चण्डी की मूर्ति के नीचे सर्वव्यापी जोगी मगरध्वज के नाम के आगे सम संख्या 700 लिखी हुई हैं इससे यह ज्ञात होता है कि यह स्थान उस समय इतना महतवपूर्ण था कि ईसा पश्चात 12 वीं शताब्दी में उपर लिखित जोगी अपने 700 शिष्यों सहित यहां आये थे।

साकोर में मढ़ा नाम प्रसिद्ध सपाट छत एवं वर्गाकार मंदिर है। दीवाले सादी परंतु गढ़े हुये पत्थरों से कुशलता पूर्वक बनाई गई हैं। कोष्ठ के द्वार पर कुछ नक्काशी की गई है। चौखट पर अष्टभुजा देवी की प्रतिमा अंकित है। देवी की प्रतिमा के प्रत्येक ओर तीन नारी आकृतियां तथा दरवाजे के उपरी भाग पर नक्काशीदार एक रेखा तथा शेर का सिर बना हुआ है। देवी की प्रतिमा के नीचे खिलता हुआ कमल का फूल अंकित है। यह मंदिर गुप्त काल का पॉचवी शताब्दी ईश्वी का प्रतीत होता है।

दोनी नामक ग्राम में ग्यारह मंदिरों का समूह है जो 10वीं–11वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। विभिन्न प्रतिमाओं में यहां अम्बिका देवी की मूर्ति विद्यमान है।

लोकगीत

गौरीशंकर हटा विराजे, कर रये हैं कल्यान। मोरे रंजन भौंरा रे।टेक।
शिवरात्रि में भरत है मेला, भीड़ हो रही ठेलम ठेला।
मेला भरो बड़ो अलबेला। हो रई जय जय कार। मोरे रंजन भौंरा रे।।1।।

गौरी शंकर ....

आप नादिया पर हैं विराजे, साथ में गौरा माता साजे।
दूल्हा रूप दर्शन दे रये। कर रये भक्तन को उद्धार। मोरे रंजन भौंरा रे।।2।।

गौरी शंकर ....

बहू मालकिन ने पधराये, माथे मे हीरा जड़वाये।
हटा नगर की रक्षा कर रये, श्रद्धा बड़ी अपार।। मोरे रंजन भौंरा रे।।3।।

गौरी शंकर ....

बुंदेली मेला भरवायो, शिवलिंग निर्माण करायो।
वरन–वरन के कोतुक हो रये गौरी शंकर के दरबार।। मोरे रंजन भौंरा रे।।4।।

गौरी शंकर ....

हाथ जोड़ कै विनय करत हौं ''अखलेश'' कछु नई बनत है।
मां शारदा कृपा से लिक्खौ, मोरे दया दुआर।। मोरे रंजन भौंरा रे।।5।।

अखिलेश कुमार पाण्डेय
शासकीय कन्या शाला बड़ा हटा

बुंदेली सांस्कृतिक शब्द

– डॉ. मनमोहन पांडे

चंबल और टोंस सरिताओं के मध्य स्थित बुंदेलखंड के विस्तृत भू–भाग पर बहुवर्णी प्रकृति, बहुरंगी संस्कृति अपनी छटा बिखेर रही है। 'बुंदेली' बोली विशाल जनक्षेत्र की बोली है, इसका विशाल शब्द भंडार है। 'बुंदेली' शब्द सरल, सहज तो हैं ही, साथ ही उनमें भाषायी रम्यता, मधुरता और मिठास कूट–कूट भरी है। शब्दों में अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता है।

लोककवि 'ईसुरी' ने मानव स्वभाव के एक भाव को चित्रित किया है–'चिमाना'

**"रजऊ न आज दिखानी, कित्ती बेरा भर लयो पानी
के हम पींठ दयें तें, के तुम कड़ी चिमानी।"**

'चिमाने' शब्द में भाव गाम्भीर्य है। बुंदेलखंड में राजा महाराजाओं का शासन रहने से जन सामान्य को 'उंची आवाज' में भद्रजनों से संवाद करने की अनुमति नहीं थी। अतः 'चिमाना' उनके स्वभाव में आ गया। चिमाने का गुण, एक साधना है। अन्य व्यक्ति के उकसाने पर भी कोई प्रतिकिया व्यक्त न करना अपने आवेगों पर संयम रखना, एक कठोर साधना है। बुंदेलखंडी इस साधना के सिद्ध साधक रहे हैं।

कहतें हैं कि बीरबल के चातुर्य से बादशाह अकबर के 'दरबारी' ईर्ष्यालु हो गये। उन्होनें एक षड़यंत्र के तहत बीरबल के जनक को राजदरबार में अपमानित करने की योजना बनाई, जिसके अंतर्गत उनसे साहित्य, संस्कृति, अध्यात्म के जटिल प्रश्न पूछकर, उन्हें निरूत्तर करने का था। बीरबल को योजना की जानकारी हो गई, उन्होंने अपने पूज्य जनक को हर प्रश्न के प्रत्युत्तर में 'मौन' रहने का परामर्श दिया। जनक ने पुत्र के निर्देशों का पालन किया। अंत में बादशाह ने झुंझलाकर बीरबल से प्रश्न किया, जब मूर्खों से पाला पड़े, तब क्या करना चाहिये? बीरबल ने उत्तर दिया– 'मौन रह जाना चाहिये।' इस घटना से बादशाह समेत सभी दरबारी अति लज्जित हुए।

ऐसी है 'मौन' की महिमा । 'मौन' (चिमाने) जैसे अनेक स्वभाव गत, भावों को अभिव्यक्त करने वाले शब्द बुंदेली में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, ये ही संस्कृति के प्राण हैं।

ऐसे ही कुछ बुंदेली शब्दों का चयन कर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

स्वभाव/भाव

गंवरगट्ट	– महागंवार
गुनमेय	– कृतघ्न
बाईचौरा	– दिखावा करना, इधर की उधर करना
नौवल	– बनावटी
बौंरयावौ	– बहलाना
बुखासन	– बुराई हो जाना
बुक्लयावौ	– हास परिहास करना
भुकरवौ	– रूठना
भन्नावो	– गुस्सा होना
भोंदू	– मूर्ख
मुकरवौ	– अपनी बात से पलट जाना
रून्ट्याई	– बेईमानी
रिरयावौ	– दीनपूर्वक प्रार्थना करना
चिरौरी	– विनम्र निवेदन
रूवन्टू	– बात–बात पर रोने वाली
लमतरानी	– गप्प देना
लग्गू भग्गू	– चापलूस
लहटावौ	– मनपसंद चीज देखकर बार–बार बुलाना
लटौ	– लड़ाकू
ललावौ	– तरसना
तिनगाना	– चिढ़ाना
ढड़क पेला	– अस्थिर
ठनपन	– बहाने बाजी
ठेंकें	– जानबूझकर
ठक्का ठाई	– स्पष्ट
धिनधिचयाव	– अति मोलभाव
घुटे घुटाये	– मंजे हुये
घरू	– घर जैसे
घोंचू	– बुद्धु
घपोंचा	– मूर्ख

चरपटया	– ऊधमी
आगीमूंतन	– ऊधमी
चौंगट	– बुद्धिहीन
छनक्वारी	– शीघ्र कार्य करने वाली
छमक छल्लो	– संजी संवरी चंचल युवती
छैल चिकनियां	– सजे संवरे रसिक युवक
छर छंदू	– ढोंगी स्त्री
जरूआ	– ईर्ष्यालु
टुनयावौ	– छेड़छाड़ करना
खुंस	– गुस्सा
ऐबी	– दुष्कर्मी
उबांड़ी	– ऊल– जलूल कार्य करने वाला
अत्त मूतना	– आतंकित करना
असत्ती	– लोभी
अलायदो	– अलग
अनारी	– ऊधमी
आड़पेंच	– छुपाकर दूशरो को नुकसान पहुचाने के लिये यत्न करना
खंगवौ	– लगातार कार्य करना

माप

गुली–गुली से	– छोटे छोटे
चुरू भर	– चुल्लूभर
टुंगावौ	– थोड़ा सा देना
जास्ती	– ज्यादा
जोर तंगोर के	– किसी प्रकार थोड़ा सा
बीसी	– बीस की इकाई
बकटो	– पांचो उंगलियों से भर लेना
बुक्काभखौ	– पांचो उंगलियों गपा कर भरना
लौंदा	– खोवा भर सनी हुई मिट्टी
पैला	– अनाज नापने का पात्र
चौथिया	– अनाज नापने का पात्र
पोली	– अनाज नापने का पात्र
कुरे	– अनाज नापने का पात्र
व्योंतवौ	– नाप लेना
राई भरो	– छोटा
सैंगो	– संपूर्ण
हींसाबाट	– बंटवारा
उमानो	– नाप
बीता	– हथेली फैला पर अंगूठे से कनिष्ठ अंगुली के बीच का नाप
बेतिया	– बीता का बहुवचन
हाथ	– दो बेतिया
बैमा	– दोनों हाथों का फैलाने पर मध्य की दूरी
टगरी	– हरी डाल चलते चलते जब मुरझा जावे उतनी दूरी को टगरी कहते हैं
अबेर	– देर
गतरा	– टुकड़ा
बिलात	– बहुत

बर्तन

घंटी	– छोटा लोटा
गड़ई	– लोटा
बिलकुआ	– छोटी टोकरी
बिजना	– पंखा
छबला	– टुकना
कुनैतो	– कोदों दलने की मिट्टी की चक्की
जॉतों	– आटा पीसने की चक्की
हड़िया	– हंडी, मिट्टी का बर्तन जिसमें चूले की ऊष्मा द्वारा दाल, चावल आदि पकाये जाते हैं
घैला	– घड़ा
टाठी	– थाली
टठुलिया	– छोटी थाली
दुनियॉं	– ढाक के पान की कटोरी
गड्आ	– बड़ा लोटा
बिलिया	– कटोरी
बोंगनियॉं	– गंजिया
थैंतो	– पलटा
कुठिया	– मिट्टी का पात्र जिसमें अनाज, रखा जात है।
कुपरा	– कोपर
घिनोची	– पानी के बर्तन रखने का स्थान
कचुल्ला	– कटोरा
पारो	– ढक्कन
कुपरिया	– छोटा कोपर
गिलसा	– गिलास
बेला	– बड़ा कटोरा

परछिया	– मठा भाने का बर्तन
पोतला	– खेत में पानी ले जाने वाला मिट्टी का बर्तन
गगरा	– मटका
बोंगना	– गंज
करैया	– कड़ाही
विलैया	– किसनी

भोजन

फुलका	– बड़े आकार की पतली रोटी
फरा	– पानी में सेंकी गई पुड़ी
बिरी	– पान का बीड़ा
बराई	– ईख
ब्यारी	– रात्रिकालीन भोजन
लुचई	– पुड़ी
लीलवौ	– संपूर्ण वस्तु उदरस्थ करना
लोल कुईया	– कार्तिक पूजन के लिए गोंठी हुई पुड़ी
सुहारी	– पुड़ी
सुदौरा	– प्रसव के बाद प्रसूता को दिया जाने वाला मेवा युक्त गुड़
थुली	– दलियां
नेनू	– मक्खन
नाज	– अनाज
नोन	– नमक
नरभरवौ	– पेटभर भोजन करना
गड़िया घुल्ला	– मकर संक्रांति पर बनने वाले शक्कर खिलोने जो हलवाइयों द्वारा बनाये जाते हैं यह एक प्रथा है
पनपथू	– रोटी
कैनो	– अनाज के बदले वस्तु खरीदना
खुरूरू	– नारियल का टुकड़ा
लटा	– महुआ, चना
डुबरी	– महुआ सिववैंया, खुरमी, खुरमा, बतियां
बिरचुन	– कुटे सूखे वेर
सतुआ	– भुजे चना जवा का आटा
चुलिया	– वांस की वनी टोकनी जो लड़की की शादी में पकवानों से भरकर भेजी जाती है।
पपरिया	– बेसन की नमकीन पतली पूड़ी
ठलूला	– मूंग, उड़द के आटे की पूड़ी
सुरा	– महालक्ष्मी व्रत पर आटे गुड़ से बना व्यंजन
कोंरी	– साबित चना गेंहू को उबाल कर खाना
बरा	– उड़द की दाल पीस कर बनाया तेल में तला व्यंजन
मगोरा	– मूंग की गीली दाल पीस वरा समान बनाया व्यंजन
कोंच की सब्जी	– मूंग की भीगीदाल की सब्जी
धोका	– बेसन में आंवले का चूर्ण मिलाकर सब्जी बनाना
ओरिया या उरगठो	– बेसन और आंवले की कढ़ी
लपटा	– बेसन घोलकर हींग मेंथी से पतली सब्जी
बरी	– उड़द और मूंग की बनती है
बिजोड़ा	– उड़द दाल तिली मिलाकर टिकिया बनाकर सुखाना
कनक	– आटा
कनूका	– अनाज के दाने
गकरिया	– बाटी (अंगारे सिकी)
चीला	– पतले बेसन की तवा पर तेल डालकर सेकी गईं रोटी
चोकर	– गेंहू के छिलक (आटा छानने पर)
तेली	– आसन्न व्याही गाय
बियारी	– रात्रि का भोजन
नैनू	– मक्खन
मलीदा	– गुड़युक्त गकरीयन का चूरा
सिमैंया	– आटे की सेव के समान
खुरमा	– नमक या गुड़ में सने आटे के चौकोर आकृति का व्यंजन
बतियां	– बेसन की नमकीन लंबे आकृति का व्यंजन
इदरसा	– कुदई के आटे और गुड़ से बनी गोल टिकियां
चललोसन	– आटे को चलनी से छानने के बाद निकला चोकर
भंगरी	– कुदई से बना पतला व्यंजन
भूंजा	– भुने चना ओर चावल से बना गीला चावल
डुबरी	– महुआ और सिमैया से बनी खीर

मुरका – महुआ और तिली से बना
मालपुआ – गुड़ के घोल में आटा मिलाकर घी में तली छोटी दो पुड़ी
दरभजिया – चने की भाजी और उड़द, मसूर
दालगूझा – मैंदा के लोई बेलकर उसमें खोवा भरकर बनाया गया व्यंजन

खेल

चपेटा – लड़कियों का खेल
मेढक दौड़
टिटंगी दौड़
बोरा दौड
लंगड़ी दौड़
सुई धागा दौड़
गुल्ली डंडा
चर्रा
अट्ठू
गढ़ा गेंद
गदाफद्द
टीपू
रस्सा खेंच
अटकर चटकन
कोड़ी केरे कोड़ी केरे
घोर घोर रानी
आती–पाती

भवन

दुगई
आरौ
छिड़िया
उरवाती
इकवाई
पौंर

अंग

नों – नाखून
पखा – दाड़ी के घने लंबे बाल
घींच – गला
चोंद – मुंह
झोंटा – सिर के बालों का समूह
झुतरा – बिना कंघी के केश
फरवा – तलवा
कुतका – अंगूठा
कनबूजो – कान के नीचे
ऊंठा – अंगूठा
कोंचा – हाथ का निचला भाग
गोड़ो – पैर
गुरा – अवयव
चेंथरी – सिर का पिछला भाग
टेंटुआ – गला

समय

झुली परें – संध्या काल
झुटपटो – बड़े सबेरे
टीकाटीक दुपरिया – खरी दोपहर
लौलैया – संध्या का संधि काल
भुन्सरा – प्रातःकाल
पीरी पई – प्रातःकाल प्राची की लालिमा
अबेर – देर

पशु

चौखरी – चुहिया
छिरिया – बकरी
ठ्वाकरी – बहुत समय से दूध दे रही गाय/भैंस
डिड़यावौ – भैंस द्वारा जोर–जोर से बोलना
डुरयावौ – डोर से पशु खींचते हुये आगे बढ़ाना
डड़ोका – डंडा
मेंदरो – मेढक
मिंदरवा – मेढक
लुखरिया – लोमड़ी
लड़ैया – सियार
हरिया – फसल पर बैठा पक्षी
बिलैया – बिल्ली(मादा)
बिलार – नर बिल्ली
कुत्तू – कुतिया
कलुरिया – व्यस्क बछिया
गाड़र – भेड़
टलवा – बूढ़ा बैल
पड़ा – भैंस का बच्चा
पड़िया – भैस की बच्ची
बिलौंटा – बिल्ली का बच्चा

बछेरू – गाय का बछड़ा

लेंड़ा – कुत्ता

संबंध

धनाधनी – पति–पत्नि

नन्नो – छोटा पुत्र

मनसेलू – पुरूष

पांवने – मेहमान

बहुरिया – बहू

मिहरारू – पत्नि

लतरौंदा – दामाद

लरका – पुत्र

देवरा – पति का छोटा भाई

जेठ – पति का बड़ा भाई

मताई – मॉं

लुगवा – पुरूष

लुगाई – स्त्री

लल्ला – पुत्र

आजी – पिता की मां

कक्का – चाचा

मोड़ा – बच्चा

मोड़ी – बच्ची

रीति रिवाज

बायनौ – कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया गया पकवान

बोड़ार – विवाह में फुआ द्वारा भेंट की गई साड़ी

बरूला – होली के समय गोबर के बनाये गये छोट कंडे

मोचायनो – नई बहू की मुंह देखने की रश्म

रामध्वाई – राम की सौगंध

लखूरौ – लाख दिया जलाना

लाकौर – विवाह की रश्म

सजन पांत – विवाह की पंगत

हॉथे लगावो – मनोती मनाने पर पंजा हल्दी में रंगकर लगाना

चैंया मैंया – भांवरे पड़ना

चूल – सपरिवार

ढिग लगाना – लीपने के पहले छुई का बार्डर बनाना

जैबा खाई – भोजन करना

जेवनार – पंगत

न्योतो – निमंत्रण

न्योतार – मेहमान

पजोखो – मृतक के घर बैठने जाना

डांड़ों – होलिका के मध्य गाड़ा गया बांस

ढला चला – परम्परा

आखौती – नाइन को नाज देना

चीकट – विवाह के अवसर पर भाई द्वारा बहिन को दी जाने वाली साड़ी

ठठरी – अर्थी

साग–सब्जी

कनकौआ

लिसुवा

चौरई

नोनिया

पोई

ककोरा

पड़ोरा

नृत्य

राई

शेर नृत्य

अश्व नृत्य

कागड़ा

नारदी

कदुआ

लोगी

फाग

ढिमरयाई

दिवारी

लोकगीत

दादरे

लोरी

मामुलिया

आभूषण

छागल

अरौना

लल्लरी

ढुलनिया
हमेल
पांसे
बेंगुआ
बजुल्ला
नोंगरई
दोहरी
कट्डोरा
गुच्छा
अनौटा
लच्छा
झांजे
छैलचूड़ी
मोरवार
छूटा
मूंगन की माला
तरकुला
झुमकन
खुटला
पायजेब
रूलें
टोड़ल
चंद्रहार
पायल
बीजासीन पुतरियां
चंदा
सूरज
हॉ
तबजिया
कठला
बगनखो
शैली
मोतियों के हार
गोप
सांकर
तरकी
कन्नफूल
कनौटी

लौड़िया
झुमकी
ढारें
झूला
गुच्छा
ऐरन
बारी
मुरकी
लोंगे
बिजली
तरकियां
पुंगरियां
दुर
बेसर
दुलरी
नथनी
कीलें
बीज
शीषफूल
बेंदा
टिकुली
केकरपान
झूमर
दावनी
बंदिया
गजरियां
गुंजे
पोंछियां
बुहटां
बाकड़
बटा
डारें
बखोरा
बखोरियां
बाजूबंद
सतलरा करदौना
पचलरा करदौना
चौरासी

पेटी
पट्टा
डोरा
डुलनियां
कटीले बिछुआ
पांवपोश
छुटिया
हंसली
खंगोरिया
सुतिया
टकार
हमेल
बिचौली
ठुसी

प्रकृति

जुंदैया – चांदनी
ठठेरो – ज्वार का सूखा तना
डांग – जंगल
बसकारौ – बरसात
सुर्रक – ठंडी हवा
सनाको – सन्नाटा
बगीचिया – उद्यान
एजर – घास पूस
ओर – ओले
उरैंया – भोर की धूप
घाम – धूप
झुकमुको – सूर्योदय के पूर्व का समय
भोर – सुबह

फल

झरपोटा
ओंरा
जरियों के बेर
करौंदा
मकुइया
मकौरा
अंगीठा
ऊमर
किसरूआ

सुरका
घिजावरें
सिंगारे
कोंसे
कलींदो
चीमरी
कैंथा

वस्त्र

वस्त्र
पुन्तरैया
फतोई
मिरजई
लत्ता
सुपेती
पोलका
धरौवल
घंघरा
नुंगरो
लुंगरो
लंहगा
सोगी
गस्ता
घंघरिया
धुतिया
इकलाई

चोली
अंगिया
जम्फर
पिछोरा
फरिया
शैला
मंडील
पाग
सुवाफा
सुवाफी
पंचा
परदनी
बिरजिस
पनैंया
वस्त्र
पुचऊ
मुंडा

पटकी
सराई
फतूम
कुर्ती
सलूका
कालबंडी
मिरजाई
शेरवानी
सदरी
अचकन
अंगोछा
अंगोछी
कथई
कथरी
बागो
गानों गुरिया
मुंदरी
खुरमा
दाउनी
दसांगरो
पैजना
बिछिया
करदौनी
बूंदा टकार
उंगठ्ठाने
बारी

कुण्डल
तिकड़ी
ककना
बेंदी
बंगरी
वांके
चूरा
कड़ा
छला
छाप
पेंती
हथपोश
कचेरा
अमरस
सुरक्का
चुनिया
पटेला
ऐंठी
इमरती
बताने
गजरा
रेखड़ी
कटमा
मटरमाला
सीतारामी
नौलखा हार

सन्नाने हुरियारे

ऐसे सन्नाने हुरियारे। मोरी सुनो परौसी प्यारे।।
सवरे कण्डा टपरा पै के लै गये हैं हत्यारे।

वड़े कुआ की टटिया टोरी गैल में कांटे डारे।।
घर के ऊपर पथरा फेंके सव खपरा फोड़ारे।

'मुकुल' उठाकें पिरिया लै गये गारीं दै गये न्यारे।।
ऐसे सन्नाने हुरियारे। घेरा मो पै उन्ने डारे।।

पानी भरिवे खों मैं गइती तबई बरे फगुवारे।
आगे आकें ठाड़े हो गये दाबे दोऊ किनारे।

मार दई पिचकारी कसकें सराबोर कर डारे।
चली धार गई तिन्नी केतर कंचन घाटी द्वारे।।

मुकुल विकल भई दशा देख निज मरी लाज के मारे।
जानत्ती पांड़े खों सूदौ कड़े विकट हत्यारे।।

रचयिता

कन्हैया लाल शास्त्री 'मुकुल'
खांदी ताल बेहट जिला–ललितपुर (उ.प्र.)

बुंदेली बुझौवल

–कु. सौम्या पांडे

अपने ज्ञान की धाक जमाने की प्रवृत्ति आदि मानव से चली आ रही है। ज्ञान का प्रभाव सामने वाले पर छोड़ना एवं चमत्कृत करना मानव स्वभाव है। साहित्य में भी यह विधा बहुत फली फूली है। सूर के कूट पदों में इसे सहज ही देखा जा सकता है।

'कहत किन परदेशी की बात,
मंदिर अरध हरि बद गये,
हरि आहार चल जात।'

विरहणी नायिका कहती है, कि आगंतुक के लौटने का कोई भरोसा नहीं है। उन्होंने– 'मंदिर अरध' त्र भवन का आधा भाग अर्थात पख्खा। पख्खा का तात्पर्य पखवाड़े से है (पखवाड़ा-पंद्रह दिन)। हरि आहार त्र सिंह का भोजन अर्थात मांस। मॉस का अर्थ माह (तीस दिन)। वायदे के अनुसार पखवाड़े की अवधि गत हो जाने के बाद भी माह बीत गया, पर नायक की वापिसी नहीं हुई।

शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने का प्रयास साहित्य में सतत गतिवान है यही प्रवृत्ति बुंदेली बोली में भी पाई जाती है। बुंदेली बुझौवल के कुछ दृष्टांत यहां प्रस्तुत किये जा रहें हैं :-

1. फरैं न फूले छबलन टूटे– राख
2. रात में खाली दिन में भरी– अरगनी
3. भूरी बिलैया हरीरी पूंछ, न जाने तो बऊ से पूंछ– मूली
4. रींग रींगा तीन सींगा, गाय गोला दूध मीठा– सिंगाड़ा
5. गैर गैर बारी, बीच में गुंचू कारी– आंख
6. एक बेलवा अजरा कजरा, चारौ देश रमाय
   बास्सा सें बात करे, पानी देख डराय– कागज
7. वन से निकरो वन विलार, आदो करिया आदो लाल– घुंघचू
8. जान कहानी मोरी, मुंडी मतारी तोरी– सुपारी
9. कारी कुत्तु कुदवा खाये, भोंक परे ता जी से जाय– बंदूक
10. तनक सौं लरका लये गुटान धर मसके ता हले जुवान– बिछ्छू
11. एक थाली में दो अंडा, एक गरम एक ठंडा– सूरज, चांद
12. एक लठिया की ऐसी कहानी, उमें लुको है मीठो पानी– बराई
13. दिन भर सपरे दिन भर खाये, लबरो नोईं सासों आय– ईंट का सांचा
14. गंग शीष उपर बहे, गरे मुंड की माल,
    वर्धा पर असवार है, गोरा को पति नॉय– रहट
15. आठ खटाखट नो तलवारें, जौ न कटै गज बेल की डारें– परछाई
16. आगर देखो सागर देखो, ऐसे रूख कहूं नई देखो
    फल के ऊपर पत्ता– सिंगाड़ा
17. तनक सो बेटा बम्मन को, तिलक धरें चंदन को– उड़द
18. नॉय गये मॉय गये, चौखरो लटकाये गये– ताला
19. नॉय मॉय गये, डब्बल भर जागा में बैठ गये– लाठी
20. चौबड़ पूछे तीवड़ से, तीबड़ दूबड़ कहां गयो है
    सत्तर पूंछ बहत्तर कान, जीखों गओ हे दूबड़ खान– शेर पूछ रहा है तिपाये से कि आदमी कहां गया है तिपाया कहता है आदमी गेंहू काटने गया है
21. पेलें भई ती बेने बेने, फिर भये ते भैया
    भैया उपर बाप भये ते, फिर भयीं ती मैया– कौंची, महुआ, गुलेंदा, गुली
22. पान कैसों पत्ता, सुपारी जैसो रंग
    देवरा को छोड़ के, चली जेठ के संग– राहर
23. एक चौंतरा पे घास जमीं– मूड़
24. एक भुजा धारन करे, बैठो आसन मार
    सब जग खां बस में करे, तन में नईया चाम– जातों
25. दस जनन के बीच मे पकड़ी गई एक नार
    अपनो काम संवार के, पांछू डारी मार– रोटी
26. सोने को गगरा, मेन को ढकना जी में पिड़े चार बिग्ना–तेंदू
27. अपन तो कल्लू कोयला सी बिटिया जाई पटोला सी– कड़ाई, पूड़ी
28. कल्लू छछूंदर दिया सलाई, भगो रे लरका डाकन आई– रेलगाड़ी

29. लाल तोरो लांगा, हरीरी तोई
बरे तोरो लांगा, मैं सब रात रोई– लाल मिर्च
30. एक घर में बाबाजी सोवें, दूशरे में पांव पसारें– लंगर
31. एक गौरी एक कारी नार, एक ही नाम धरा करतार
एक छोटी एक बड़ी कहावे, एक थोड़ी एक बहुत बिकावे– डोड़ा, इलायची
32. तुमाई घरवारी हमें देत तुमें देत नइयां– घूंघट
33. एक भरका में लोटे लरका– जीभ
34. सुरका के नीचे भरका, ओई में बिड़े बत्तीस लड़का– दाँत
35. पारे भर राई, सबरे में बगराई– तारे
36. एक थार मोती से भरा, सबके सिर औधा धरा
वह था चारों ओर फिरे, मोती उससे एक न गिरे– तारे
37. मैं गोरी मेरे बच्चे काले, और मोये छोड़ मेरे बच्चे खा ले– इलायची

कु. सौम्या पांडे
महर्षि विद्या मंदिर, हटा

गीत

"ऊषा नवल दुल्हनियाँ रे"

पूरब भव्य भवन से निकरत ऊषा नवल दुल्हनियाँ रे
जात गगन की सैर करन,दमकत जैसें दामिनीयाँ रे।
लेत बलइंयाँ चलत चाँद के संगे सूरज साजन।
छिन–छिन बदलत रूप सलौनो अनुपम अमर सुहागन

जियै देखवे नींद त्याग कें भगत भोर सें दुनिया रे।
ओसन मुतियन मानिक मन सें माग भरत अनहौनी
ऐसी बनन बनत है बाँकी लगत सबई खौं नौनी।

भँवर रूप कजरा अँखियन में आँजत मन मोहनियाँ रे।
धूप छायँ की सारी पैरत नित कंचन तन मइँयाँ।
कलियाँ है मुस्कान फूल है हँसी सरूप उरइँयाँ।

अरून कमल की भाल बिंदुलिया सूरज मुखी नाथनियाँ रे।
झुरमुट झुमकीं गंगा जमुना हार गरे झलकत हैं।
हातन बीच हवा के कगना खन खन पै खनकत हैं।

झुमत रत चूमत रत करया किरनन की करधानियाँ रे।
बजत चरन के बीच चिरइँयँन की चूँ–चूँ पैजानिया।
जइकी सतरंगी चूनर से शोभित "शिवा" धरनिया।
सबसें मिलत सनेह भाव सें ऐसी सरत मिलनियाँ रे।

– डॉ. शिवाजी चौहान
गुरूसराय– झाँसी (उ.प्र.)

समाज सृजन में बुंदेली लोक संस्कृति का योगदान

डॉ शंकरलाल शुक्ला
एम.ए.,पी.एच.डी.,डी.लिट.

बुंदेलखंड भारत का हदय प्रदेश है। कलकल निनांदिनी पीयूषमयी सरिताओं झर–झर करते निर्मल निर्झरों, सरसिज सौरभ–सुरभित सरोवरों, सुदूर तक विकीर्ण सुरम्य सौरभ–सुरमित सरोवरी, सुदूर तक विकीर्ण सुरम्य गिरिमालाओं एवं नयनाभिराम सघन वनस्थलियों की प्रकृति प्रदत्त सुषमा ने यहाँ की धन–धान्य प्रपूरिता रम्य भूमि को दोनों हाथों से संस्कृति, कला और काव्य की अपार सम्पदा लुटाई है इस भूमि के कण–कण में कविता कामिनी के नूपुरों की झंकार ने लोक संस्कृति को सदैव स्पंदित, तरंगित और आनंदित किया है।

लोक संस्कृति एक सामजिक वैथिष्टय विशेषता है। तथा है अद्‌भुत प्रभाव शालिनी लोक जीवन शैली समाज के निर्माण में उसके उत्थान और विकास में लोक जीवन का गहरा प्रभाव पड़ता है। कहते हुये अत्यंत वेदना होती है। कि समाज से लोक संस्कृति दूर होती जा रही है। लोक जीवन रोगग्रस्त होता जा रहा है। जैसे वृक्ष से झड़ने वाले पत्ते और फूल की पंखुडियाँ पुनः वृक्ष के साथ रसमयता समाप्त हो जाने से अपनी जीवन शक्ति खो देते हैं, वैसे ही आज समाज ने मूल संस्कृति से उद्‌भूत रसों को, गुणों को सरल सहज वृतियों को छोड़कर स्वयं को निर्जीव सा वना लिया है। यह लोक संस्कृति और उसके संस्कारों की परीक्षा का हमारी लोक संस्कृति और उसके संस्कारों की परीक्षा का समय है। शिष्ट संस्कृति ने लोक संस्कृति के रच रचाव को चोट पहुँचाई है। कोयल संगीत के गीत और व्याकरण की वाणी नहीं जानती, लेकिन उसकी एक ही कूक हदय को अनंतकाल से छूती आई हैं। उसी प्रकार से लोकसंस्कृति की बीज आज भी समाज को जीवित रखें हैं।

लोक संस्कृति परम्परा की अनुगामिनी है। यदि शिष्ट–संस्कृति सेज का पुष्प है तो लोक संस्कृति बनफूल है। हमारे आराध्य देव भगवान, कृष्ण, सीता, राधा, कितने ही असामान्य क्यों न हों, लोक संस्कृति में ये सभी महान व्यक्ति जब लोक मानस में उतरकर, साधारणीकृत होकर जनासामान्य का रूप ले लेतें हैं, तभी ये लोकसंस्कृति के पात्र वन पाते हैं। यह जनवादी प्रवृत्ति, सामाजिकता की यह रूझान लोक संस्कृति के प्राण हैं। न उनमें मतवाद है, न झूठी न दिखावटी मर्यादा। गांव की हर स्त्री मां कौशल्या होती है और हर पिता महाराज दशरथ –

रानी काशिल्या की कूँख सिरानी
राजा दशरथ के नैना।
अवध मै जनमें, राम सलौना।

यही 'सोहर' छोटी सी झोपड़ी में गाया जाता है और बड़ों बड़ी 'बाखर' में, बड़े–बड़े 'अंगना' में। मैंने अपनी एक बुंदेली रचना में इसी भाव को यों व्यक्त किया है–

भलें गरीब बाप हो–
मौड़ा दशरथ घर जनमतत्तौ।
रानी कौशिल्या की कूँख सिरानी–
ढोलक पै सोहर गवत्तौ।
सौने के दिन और सोने की रातें–
सौने कौ कलश धरत्तौ।
वारी ननदिया नेग मांगत्ती,
चूल्हे पै चरूआ चढ़त्तौ।

हमारी बुंदेली लोक संस्कृति में ये सब रस बरसा करते हैं। समय बड़ी तेजी से करवट ले रहा है। अब ये 'सोहर' कम सुनाई पड़ते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक पूरे समाज की आत्मीयता, जीवन को आनन्द से सरोवोर किया करती थी। बसोर कक्कौ नरा काटती थी। धोबिन भौजाई सोर के कपड़े धोती थीं। सास औ ननदें चरूआ धरातीं थीं। नेग लेती हैं। अतयधिक आत्मीयता में डूबा बच्चे का जन्म खुशियों से भरा होता है। कई दिनों तक ढोलक गयकवी थी। 'सोहर' आनन्द बधाये घर, देहरी और आंगन में जैसे अमुत की वर्षा करते थे, जरा नहाइये इस लोकगीत में जिसमें ननद, भौजी के बेटा होने पर सोनें के कंगना मांग रही है–

मांगे ननद बाई कगना,
ललना के भये के।
अंगना में ठांड़े ससुर समझावै,
दै दो बहूरानी कंगना, ललना के भये के।
अंगना में ठांड़े, जेठ समझावैं,
दै दो बहूरानी कंगना, ललना के भये के।
जे कंगना मेरे मायके से आये–
मइया ने भेजे जे कंगना, ललना के भये के।

हमारे बुंदेली समाज में जन्म से लेकर अन्तिम संस्कार तक पूरा जीवन आत्मीयता, स्नेह, प्यार और संस्कारों के स्वर्णमय वातावरण से भरा रहता है। लोकगीतों ने समाज में जीवन के रस घोले हैं।

विवाह के समय बन्ने, गारीं, अब कम सुनने को मिलती हैं। कभी बारात को सजते संवरते देर हो जाती थी तो स्त्रियां गा उठती थीं–

अबेरे दूलहा काये सजे महाराज,
दूल्हा के मामा कौ बड़ौ परवार।
सजत संजा हो गई महाराज।
दूल्हा के काकुल बड़ौ परवार,
सजत संजा हो गई महाराज।

पूरे समाज का समर्थन व सम्मान पाने के लिए वर (दूल्हा) की पालकी पूरे गॉव में घूमतीं थीं। इसे राछरी कहते थे। घर–घर दूल्हा का टीका होता था। पीछे–पीछे स्त्रियां गाती हुई चलती थीं।

बना रस गेंदुला जिन घालो,
मोरे लाग जैहै रे।

अब न राछरी निकलती है और न ही स्त्रियां गाती है। मन और प्राणों को भिंगो देने वाले ये गीत अब सुनने को नहीं मिलते हैं।

सामाजिक संरचना में हमारी लोक परम्पराओं ने बड़ा योग दिया है। विवाह के पश्चात दूल्हा–दुल्हिन की प्रथम मिलन रात्रि जिसे सुहागरात कहते हैं, के पूर्व 'दादरे' गाये जाते हैं इन दादरों में पत्नि को समझाया जाता है कि संसार स्त्री के लिए पति ही सब कुछ है। पति के बिना सारा संसार सूना है। इस दादरे की ये पंक्तियां कह देती हैं–

है बाग सूनौ रे कोयल बिन,
अपने पिया बिन सब जग सूनो,
है ताल सूनो रे हंस बिन।

समाज में पिता–पुत्र, बहिन–भाई, पति–पत्नि का प्रेम जैसा लोकगीतों में मिलता वैसा शिष्ट साहित्य देखने को नहीं मिलता। वर्षा प्रारम्भ हो चुकी है। पिया व्यापार के लिए परदेश जा रहे हैं। वर्षा जैसी सुहावनी ऋतु और उनसे बिछोह हो इसे कैसे सहे। गा उठती है–

पर के करियो विदेश हो राजा
आसों के साउन राजा घरई करो।

बहिन अपने भैया से रो–रो कर कहती है कि हे भैया सुहाना सावन मांग में सेंदुर सजा रहा है, हमें मैया (मॉ) के देश ले चलो–

साउन सेंदुर मांग भरै वीरन–
चुनरी रंगइयो बड़े मोल,
विरन मोरे, भाई कौ देश दिखइयो।

आज की तेजी से बदलती समाज की तस्वीर में अब स्वर कहां देखने–सुनने का मिलते हैं आज जीवन से लोक संस्कृति की वह कल्पना, रंगोली, कोहबर के चित्र, चौक पूरना, कलश रंगना, पंजो को रंगकर दीवाल पर छापा लगाना, द्वार का बंदनवार, मंगलगीत, सोहर, विवाह के गीत गारिया, बनरे, रतजगे, रसिया, भजन, स्वांग, अन्नकूट टेसू के गीत, जवारे, अछरी, पंवारे, ख्याल, रावला, रमटेरा, सब कुछ लुप्त हो रहा है। अब साजन के आने पर द्वारे पर स्त्रियां वहां गातीं हैं–

कोट नवै परवत नवै,
सिर नवै नवाये,
माथौ आजुल जू कौ–
तब नवै जब सजन आये।

हमारा पहनावा धोती–कुर्ता, अंगरखा, बंडी, अंगौछा, परदनी, धोती, बांड़, लहंगा, चुनरी, सलूका, पोलका, पचिया, टीका, बेंदा, खौर, नथ, बिछुआ, लल्लरी, तिधानो, करधनी, अनंता हमारे ऐसे गहनें थे जिनसे स्त्रियां सजकर घर की लक्ष्मी बनती थीं। आज ये सब गहने नदारत हैं।

हमारे खान पान से कढ़ी, भरत, गुलगुला, चवैना, सिमइयॉ, जैसे रूठ गये हैं। करवा चौथ, आठ, हरछठ, भइयादूज, फीके पड़ गये हैं। सावन के झूले, कठपुतली के नाच, स्वांग, गेरू, ऐपन चित्र, भाइयों की आरती आदि केवल कथा– कहानियों में रह गये हैं। हमारी–लोक संस्कृति कितनी जीवांत थी–

पथरीलौ पिया तोरौ देश,
हमाई अनी तौ मुरक गई विछिया की।
–0–
गाड़ी बारे मसक दैरे बैल,
अवै पुरवइया के बादल ऊनये।
–0–
आगम बदरिया ऊनई रसिया–
पच्छम वरस गये मेव
अरे पुरवइया के बादर ऊनये।
पन्ना के जुगलकिशोर मुरलिया में–

हीरा जड़े हैं।

–0–

अंगना में हरी–हरी दूबा,
धिनौंचित केवरे महाराज।

यथार्थ में लोक संस्कृति एक अनपढ़, अल्हड़, अनन्त, रूपवती, गुण सम्पन्न, पवित्र चिरकुमारी है। वह गंगा सी पावन और हिमालय सी पुरातन है। प्रकृति की अक्षय देन है। विभिन्न जातियों, वर्ण, धर्म, तथा शब्दों की जन्मदात्री है। अनेक जनपदों में उसकी अपनी पहिचान है। उसका अपना शील, वेश, आचार, देवता, समाज, उत्सव मनोविज्ञान और इतिहास है।

इस लोक संस्कृति की रक्षा करना और इसे जीवित रखना इसे चनौतियों से बचाना और इसी प्रगतिशील प्रकिया को आगे बढ़ाना प्रत्येक सामाजिक प्राणी का दायित्व है। समाज की रचना और आचार विचार बुन्देली लोक संस्कृति के वरदान है। आज सब कुछ प्रदूषित हो रहा है। संस्कृति और लोक संस्कृति में प्रदूषण आ रहा है। हमारी नैतिकता जीवन मूल्य और सह अस्तित्व में असंतुलन आ गया है। जीवन का स्वाद जैसे चला गया है। हमें चाहिये कि हम अपने हाथों अपनी लोकसंस्कृति का विनाश न करें।

लोक संस्कृति का हृदय बड़ा विशाल है। बुंदेली लोक संस्कृति में, उसकी छाया में संपूर्ण बुंदेली धरा आलोकित होती रहती है। यहां, नदियां, गाय, धरती सभी को ऐसे माना और पूजा जाता है। जैसे वे हमारी मां हैं। और सचमुच यह गाय हमारी जैसी ममत्व दिखाती है। सुरहिन गाय का पंवारा देखिये जिसमें गाय शेर को दिया वचन निभाने अपने बच्छे को भी साथ लाती है–

दिन की उगन, करन की बेर।
सुरहिन बन को जांय हो मॉं।।

–0–

बचन की पक्की सुरहिन गैया,
एक गई दो आय हो मां।

लोक संस्कृति को क्षेत्र विशेष से नहीं नापा जा सकता। भारत की लोक संस्कृति में एक समरसता है, पीड़ा है, बड़प्पन है, अनुराग है, आनन्द है। उसकी रक्षा कीजिए। ऐसा न होने पर यह लोक संस्कृति धरती में समा जायेगी।

लोक संस्कृति ईश्वर का वरदान है। यह अतीत है। वर्तमान का सचेतक और भविष्य की चुनौती है। इसकी रक्षा कीजिये। इसे प्यार दीजिये। मॉं जैसा आदर और पिता जैसा श्रद्धेय बनाये रखिये।

डॉ. शंकरलाल शुक्ल
जिला–दतिया

बसन्त

प्रेमशंकर पाठकर (विराग)''हटा''

कोरों के काजल की स्याही से बने चित्र,
स्वारित्त श्री नेह पूर्ण भूमिका सजायी है
एक–एक बोल में उसांस भरी दर्दों की,
महुआ के गुच्छों की, मादकता छाई है।।

रची–पची प्यार के पसीने में हर लकीर,
खूंट–खूंट मुड़ा, आसुओं की गंध आई है।
मंद–मंद मलयानिल, सांझ और भोर बही,
कोयल की कूक ने, अमरैया जगाई है।।

खंडहर के प्रेत सी,अतीत की प्रतीत लगी,
वेला, कन्हेर खुसर–पुसर वेल वतयानी।
बेर वा मकोरा,वयस्क हुए जंगल में
सांवले करोंदा की , पोर–पोर हरयानी।।

कृषण रंग मखमल की पाग धरी टेसू ने,
लग्न पत्र बांच रहा, माघदेव परछी में।
श्रोता गौरैया कब फूंक आई घर–वन में,
तोता ने लेख पढ़ा, पीपल की परची में।।

नदी की तराई बीच, खेतों से दूर–दूर,
सुनने लगे प्रवचन सब, ब्याह गये संत का।
छाती की धड़कन, अंगडाई के रूप धरें,
पत्र मिला आज सखी, क्वांरे बसंत का।।

देवश्री गौरीशंकर जी
की दुर्लभ प्रतिमा की छवि

श्री विष्णु प्रसाद जी पाठक, संचालक लोक कला एकेडमी, सागर दीप प्रज्जवलित करते हुए
साथ में श्री पुष्पेन्द्र सिंह हजारी
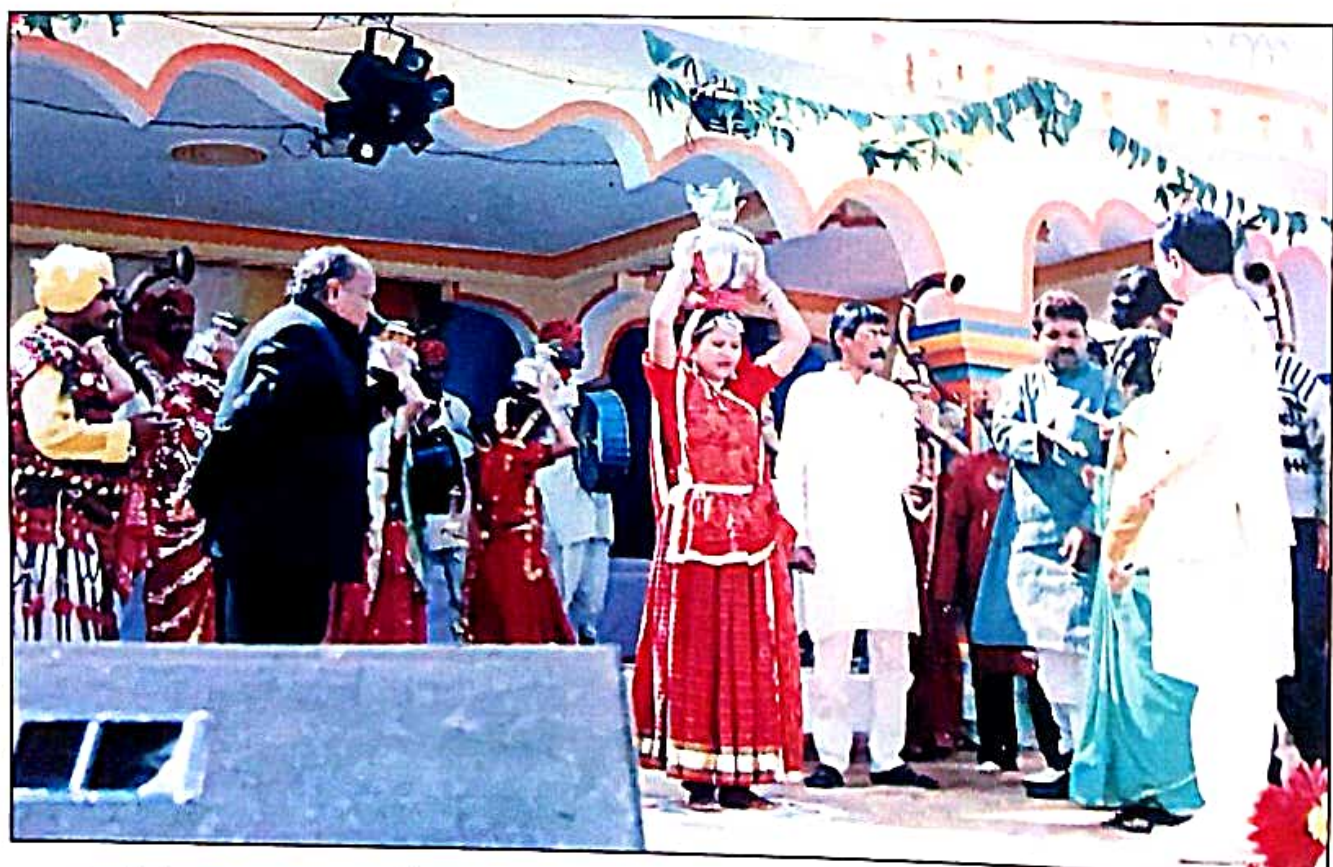
बुन्देली मेला के उद्‌घाटन समारोह पर श्री विष्णु पाठक, श्री चंद्रभान सिंह, सांसद एवं श्री पुष्पेन्द्र सिंह हजारी

श्री मानवेन्द्र सिंह एवं श्री पुष्पेन्द्र हजारी, श्री गोपाल भार्गव, मंत्री म.प्र. शासन को माल्यापर्ण करते हुए।

षटरस व्यंजन की महक
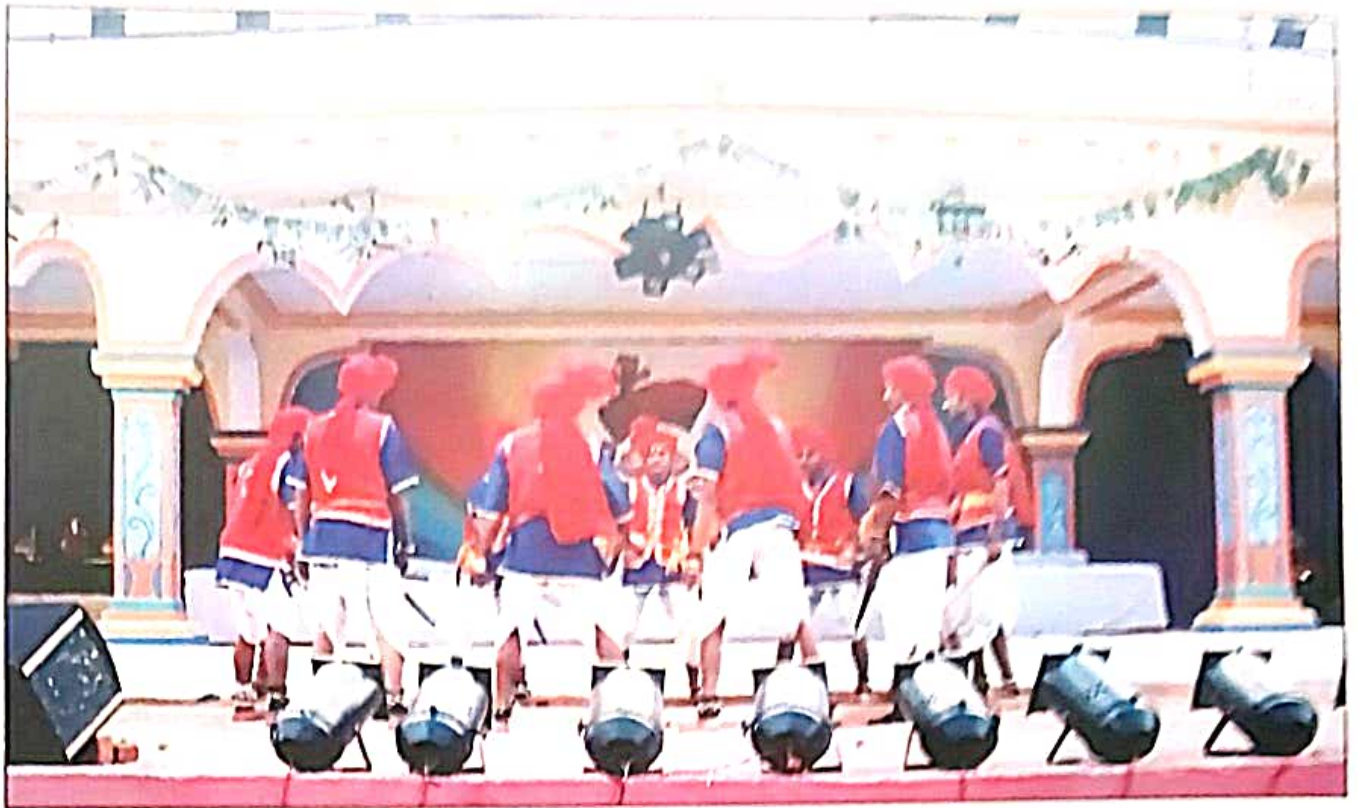
बुन्देली मेला के उद्घाटन के सुअवसर पर सुसज्जित मंच पर लोक कला एकेडमी, सागर के कलाकारों द्वारा ढिमरयाई नृत्य की प्रस्तुति।

बुन्देली मेला में आयोजित महिला साईकिल दौड़ प्रतियोगिता

हटा के जैन मंदिर

–जयकुमार जैन 'जलज'
हटा–दमोह

जैन दर्शन भारतीय संस्कृति क मूलाधार है। इस दर्शन में भक्त को भगवान बनाने की शक्ति निहित है। चौबीस तीर्थकारों की जन्म एवं निर्वाण भूमि के साथ जैन संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में अनेक तीर्थ क्षेत्र पूरे राष्ट्र में विद्यमान हैं वहीं बुन्देलखंड में कुण्डलपुर, नैनागिर, आहारजी, पपौराजी, द्रोणगिर, देवगढ़, चंदेरी, थूबोनजी, बजरंगगढ़, टोढ़ी फतेहपुर, सेरोनजी, क्षेत्रपाल जी ललितपुर, बीना बारहा, श्रेयांसगिरी, पटनागंज रहली, पटोरियाजी, कोनी जी, बहोरीबंद, सोनागिर, खजुराहो आदि प्राचीनतम तीर्थस्थल जैन धर्म की ध्वज पताका फहरा रहे हैं। हटा क्षेत्र के आसपास के अनेक नगरों में जैन मंदिर या तो गिर गये अथवा कहीं–कहीं आज भी वहां मंदिर बने हुये है बरी कनौरा, रनेह, बिजौरी, हारट, फतेहपुर, भिलौनी खमरिया, नरसिंहगढ, पंचमनगर, ढिगसर आदि जगहों पर जैन संस्कृति आज भी दुष्टि गोचर होती है। बतातें हैं कि हटा नगर में भी किसी समय 13 जैन मंदिर थे। आज नगर में चार जिनालय मौजूद हैं।

पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (बड़ा मंदिर)

(सार्वजनिक न्यास कमांक ह/13)

हटा नगर के मुख्य मार्ग पर पुत्री शाला के सामने सुभाष वार्ड में लगभग 250 वर्ष प्राचीन दो शिखर युक्त वेदियों से सुसज्जित सकल जैन समाज का भव्य मंदिर है जो पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (बडा मंदिर) के नाम से जाना जाता है। मंदिर में दो वेदिया है जो कपासिया वंश एवं चंदेरिया वंश की प्रमुखता लिये हुये हैं। एक वेदी में भगवान नेमीनाथ की मूलनायक प्रतिमा लगभग 4 फुट ऊंचाई की पद्मासन काले पाषाण से निर्मित (वि.सं. 1874) है, बताते हैं यह प्रतिमा हटा स्थित गैर मुर्रा पुल के पास के पत्थर से हटा के ही हाकन मिस्त्री द्वारा निर्मित की गई थी। इस प्रतिमा के एक ओर मुनि सुव्रत नाथ भगवान की एवं दूशरी ओर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित है। इस वेदी में करीब 118 धातु एवं पाषाण की प्रतिमायें हैं। दूसरी वेदी में मूल नायक भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है। एक ओर भगवान पार्श्वनाथ तो दूशरी ओर भगवान चन्द्रप्रभु की प्रतिमा सहित वेदी में करीब 30 प्रतिमायें धातु पाषाण की हैं। मंदिर में एक धर्मशाला सर्व सुविधायुक्त है। इस मंदिर से एक साथ 55 मूर्तियों की चोरी एवं मूर्तियों सहित चोर के शीघ्र पकड़ जाने आश्चर्यकारी घटना है।

सन् 1976 से 1980–81 तक परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ससंघ का अनेक बार इस मंदिर में प्रवास हुआ है आचार्य श्री द्वारा रचित समसुत्तम जैन गीता का अखंड पाठ पहली बार आचार्य श्री द्वारा यहीं शुभारंभ कराया गया। दिगम्बर जैन संतो, आर्यिका माताजी का आगमन होता रहता है, जिनके द्वारा मंदिर की प्रतिमाओं को अतिशयकारी बताया गया है। सन् 1998 में आर्यिका श्री भाग्यमति माता जी सन् 2001 में आर्यिका श्री आलोकमति माता जी आर्यिका श्री सुनयमति माता जी एवं सन 2007 में क्षुल्लक श्री पूर्णसागर जी महाराज का चार्तुमास सम्पन्न हो चुका है।

श्री आदिनाथ त्रिमूर्ति दिगम्बर जैन मंदिर, हटा

(सार्वजनिक न्यास पंजीयन क्रमांक ह/7)

हटा नगर में पुत्री शाला के सामने सुभाष वार्ड में श्री आदिनाथ त्रिमूर्ति दिगम्बर जैन मंदिर सन् 1996 में जीर्णोद्धार के पश्चात वर्तमान भव्य स्वरूप प्रदान किया गया। 6 मार्च से 11 मार्च 1996 मे परम पूज्य मुनि श्री निर्णयसागर जी महाराज के मंगल सानिध्य में प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री बाबूलाल जी पठावालों के निर्देशन में आयोजित पंचकव्याणक वेदी प्रतिष्ठा एवं कलशारोहण के साथ मंदिर में मूलनायक भगवान श्री आदिनाथ (लंबाई सवा तीन फुट) आजू–बाजू में भरत एवं बाहुवली की प्रतिमा स्थापित की गई। मंदिर में कुल 20 प्रतिमायें हैं जिसमें एक सिद्ध भगवान की प्रतिमा है। दिनांक 10.12.1955 में सार्वजनिक न्यास पंजीकृत क. 7 ह के अन्तर्गत पंजीकृत यह सार्वजनिक न्यास है। पूर्व में श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुजराती मंदिर के नाम से 25 अगस्त 1925 भाद्र शुक्ल 5, 6 मंगलवार विकम संवत 1982 में इस मंदिर की स्थापना की गई। मंदिर जी को भूमि सिंघई मूलचंद पिता श्री मन्नूलाल जैन, सिंघई हरप्रसाद पिता मन्नूलाल जैन एवं स्व. श्री गुलाबचंद पिता श्री हरप्रसाद जैन द्वारा प्रदत्त कराई गई। मंदिर के संस्थापक सदस्यों में सिंघई श्री मूलचंद पिता श्री मन्नूलाल जैन, सिंघई श्री खुमानलाल

पिता श्री रामचंद जैन, सिंघई हल्केलाल पिता श्री रामचंद जैन, सिंघई भुवानीप्रसाद पिता श्री छैकोड़ीलाल जैन टेंटवार वंशीय कुल भूषण जिनेन्द्र भक्त हैं। मंदिर में धर्मशाला एवं एक आकर्षक बग्गी रथ है। मंदिर में आचार्य ज्ञानसागर संस्कार केन्द्र पाठशाला 15 जून 2003 से चल रही है।

श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर नावघाट, हटा

सन् 1938 में नावघाट के सामने अपनी निजी मकान की भूमि में एक दो मंजिला मंदिर का निर्माण सिंघई कुन्दनलाल, सिंघई भैयालाल सिंघई गरीबदास, सिंघई पन्नालाल जैन चारों भाईयों ने कराया। मंदिर में सुपार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा खुरई स्थित श्री मलैया मंदिर से लाकर विराजमान कराई गई। लगभग 25 वर्ष पूर्व दमोह में सम्पन्न पंचकव्याणक गजरथ महोत्सव से प्रतिष्ठित कराकर भगवान महावीर की संगमरमर की 9 इंच उंचाई की प्रतिमा एवं सिंहभगवान की पीतल की प्रतिमा विराजमान कराई। सन् 1996 में हटा में सम्पन्न पंचकव्याणक प्रतिष्ठा समारोह में भगवान पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराकर विराजमान की गई।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर(बड़कुल) हटा

(सार्वजनिक न्यास कमांक ह/18)

रतन बजरिया गौरीशंकर वार्ड हटा में देव श्री पार्श्वनाथ जी मंदिर बड़कुल वाला स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में मूलनायक भगवान नेमीनाथ की सवा चार फुट उंची पद्मासन काले पाषाण की प्रतिमा बीच विराजमान है। आजू-बाजू में भगवान पार्श्वनाथ की श्वेतरंग की पाषाण की प्रतिमा विराजमान है। वर्तमान में गर्भगृह में पाषाण की 14 प्रतिमायें एवं एक धातु की चरण पादुका विराजमान है। मंदिर के गर्भगृह के सामने रक्षक देव श्री क्षत्रपाल जी की मूर्ति विराजमान है जिनकी प्रसिद्धि एवं मान्यता दूर-दूर तक फैली है लोगों की मनोकामना पूरी होती है। मंदिर में धर्मशाला भी है। मंदिर की दीवार पर एक शिलालेख लगा हुआ है। मूलनायक भगवान नेमीनाथ की प्रतिमायें विक्रम संवत 1878 में श्री ठाकुरदास बड़कुल द्वारा प्रतिष्ठित कराना अंकित है वहीं भगवान पार्श्वनाथ की दोनो प्रतिमाओं में विक्रम संवत 1893 श्री ठाकुरदास बड़कुल अंकित है। और भी अनेक प्राचीन मूर्तिया मंदिर में स्थापित हैं मंदिर में स्थापित हैं। मुनि श्री कैलाशसागर जी महाराज का चार्तुमास सन् 1995 में यहां हो चुका है। मंदिर के प्रवेश द्वार से प्रवेश करते ही भव्य प्राचीन क्षेत्र की झलक दृष्टिगोचर होती है।

जैन वेदी (बड़ा बाजार हटा)

हटा के हृदय स्थल बड़ा बाजार में जैन समाज की एक के ऊपर एक दो वेदियां बनी हुई है जिससे प्रतीत होता है यहां से पंचकव्याणक गजरथ महोत्सव सम्पन्न हुये होगें। वेदी के बीचों-बीच लगे हुये ताम्रपात्र पर अंकित लेख अनुसार विक्रम संवत 1878 (वीर निर्वाण सं. 2348) में प्रथम वेदी श्री मुनि कपालिया ने बनवाई दूसरी वेदी विक्रम संवत 1914 (वीर निर्वाण सं. 2384) में नन्ने चंदोरिया ने बनवाई। वि.सं. 1992 वीर निर्वाण संवत 2046 में वेदी का जीर्णोद्धार हुआ वि. संवत 1995 माघकृष्ण 14 को यह बीजक श्री मूलचंद राजाराम सिंघई ने लगवाया। बीजक पर लिखी पंक्तियों की रचना श्री लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' कवि की है जिन्होंने अंतिम पंक्ति में लिखा है-

करो उत्सव वेदि का शोभा कही न जाय।
तापर ध्वज महावीर की 'रमा' सदा फहराय।।

इस वेदी प्रांगण में जैन समाज के धार्मिक पूजन विधान रथोत्सव के सभी कार्यक्रम संपन्न किये जाते हैं, धार्मिक कार्यक्रमों में यहां वेदी पर ध्वजारोहण किया जाता है एवं वेदी की परिक्रमा लगाई जाती हैं।

"गुरू महिमा"

गुरू शब्द अपने में पूर्णत्व को प्राप्त है जिसका पर्याय मिलना असम्भव है। गुरू शब्द अनुपमेय है। गुरू महिमा का वर्णन साहित्यकारो कवियो, बुद्धिमानो और विद्वानों की बुद्धि से परे है। गुरू महिमा जितनी लिखी जाय कम है। वैसे देखा जाय तो गुरू शब्द अनेकार्थी है। जिसके अर्थ कमशः देवताओं के गुरू आचार्य वृहस्पति, वृहस्पति नामक ग्रह, पुष्य नक्षत्र, यज्ञोपवीत संस्कार में गायत्री मन्त्र का उपदेश किसी विद्या या कला का शिक्षक, दो मात्राओं वाला अक्षर, ब्रम्ह, विष्णु एवं महेश होते हैं।

मैं अपने परम श्रद्धेय गुरू देव श्री राम कृष्ण त्रिपाठी जी का चिरऋणी आजीवन रहूंगा जिनके आशीष एवं स्नेहामृत से अभिसिंचित हो मेरी काव्य कला पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुई। यह लेख मैं उनके चरणारविन्द में अर्पित करता हूं।

गुरू परम्परा का आभिर्भाव आज से एक करोड़ इकहत्तर लाख वर्ष पूर्व सृष्टि सृजन के साथ हुआ माना जाता है। रघुवंश से ही गुरू शब्द की व्युतपत्ति है। चकवर्ती नरेश दशरथ न अपने प्रिय पुत्रों के शिक्षा ग्रहण कराने हेतु गुरू वशिष्ठ के गृह भेजा। मानस में भी इसका प्रसंग आया है - गुरू गृह पढ़न गए रघुराई, अल्पकाल सब विद्या पाई। इससे स्पष्ट होता है कि गुरू प्रथा

सनातन है।

हम विगत काल पर यदि दृष्टि पात करें तो ज्ञात होगा कि देवों के गुरू वृहस्पति दानवों के गुरू शुक्राचार्य थे। द्रोणाचार्य के नेतृत्व में पांडव रण विद्या में पारंगत हुये।

गुरू महिमा का वश वेदों ने गाया है किन्तु पार नहीं पाया है। गुरू बिन ज्ञान का होना कठिन ही नहीं अपितु दुष्कर है। भगवान कृष्ण ने संदीपन गुरू से शिक्षा ग्रहण की। कहने का अभिप्राय यह है कि बिना गुरू के जीवन पत्रविहीन वृक्ष के समान है। गुरू शिष्य का संबंध शाश्वत अटूट एवं अनन्य है। प्राचीनकाल में गुरूकुल प्रणाली रही। शिष्य गुरू आश्रम में ही पच्चीस वर्षो तक एकाग्रता के साथ शिक्षा ग्रहण करते थे तत्पश्चात गुरू के आदेशानुसार ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे।

एक करोड़ अठ्ठाईस लाख वर्ष पूर्व वेद व्यास ने बुन्देलखंड के कालपीनगर में जन्म लेकर अपने यश, सौर्य से से उसे सुवासित किया। व्यास जी के गुरू पाराशर एव परदादा वशिष्ठ जी थे। महारानी भक्त शिरोमणि व्यास ने आषाढ़ मास की पूर्णिमा को सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अठारह पुराण, चार वेद, भागवत एवं महाभारत महाकाव्यों की देववाणी संस्कृत में रचना की। आषाढ़ पूर्णिमा ने व्यास का रूप ले लिया, आगे चलकर गुरू पूर्णिमा में परिवर्तित हो गई। इस पुनीत पर्व पर शिष्य अपने गुरू की पूजा करते हैं। कुछ पत्र–पुष्प मिष्ठानादि भेंट में भी लाते हैं। गुरू इस दिन शिष्यों को आशीष देते हैं। गुरू अनंत गुण समाहित हैं। गुरू समदर्शी होता है। भेदभाव की गंध तक उसके मन को छू नहीं सकती।

गुरू महिमा का अनेक कवियों ने वर्णन किया है। गुरू की पावन पदरज को नयनों में अॅजने तक की बात कह दी है। जिससे ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं। तुलसी ने नरहरिदास को शिवजी ने समर्थ गुरू रामदास को विवेकानंद ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को अपना गुरू स्वीकार किया। संत कवि कबीर गुरू को परमात्मा के तुल्य मानते थे। अपने को एक दिन में अनेक बार गुरू पर न्यौछावर करने को तत्पर एवं आतुर हैं। यहां तक कह दिया है–

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पायं,
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियौ बताय।
गुरू कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़–गढ़ काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहारा दे, बाहर मारे चोट।।
कबिरा हरि के रूठते गुरू की सरने जाय,
कह कबीर गुरू रूठते हरि नहीं होत सहाय।
हरि रूठे गुरू ठौर है गुरू रूठे नहिं ठौर

इसमें गुरू की कितनी महानता परिलक्षित होती है। गुरू को गोविन्द से बड़ा बताया है। जो गुरू सांसारिक बोध कराता है, वह मात्र गुरू है किन्तु जो मनुष्य थे अध्यात्म की ओर उन्मुख करता है अर्थात प्रभु तक पहुंचने का पथ प्रशस्थ करता है वह सदगुरू है। जो शिष्य को साधना की कसौटी पर कसकर कुंदन बना देता है, सदगुरू मल्लाह है जो ज्ञानरूपी वल्ली से शिष्य को भवसागर पार उतार देता है।

गुरू महिमा गंगा है। ज्ञान गोदावरी है, गुरू के दर्श, स्पर्श से स्वर्ग के समान फल प्राप्त होते हैं। समग्र अघ ताप नष्ट करने की क्षमता गुरू दर्शन में है। गुरू सूरज है जो अपने ज्ञान प्रकाश से शिष्य के अज्ञान तिमिर का अविसान करता है। गुरू की सब के प्रति सहज भाव प्रेम, उदारता एवं आत्मीयता का रिश्ता होता है। वह सहज का सच्चा सेवक विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत होता है।

गुरू का अन्तरस्थल सागर से गम्भीर, हिमगिरी सा उच्च होता है, भाव भागीरथी से पावन होते हैं। गुरू सत्य एवं शाश्वत है। गुरू की महिमा का कहां तक वर्णन किया जाए, मेरे पास इतने शब्द नहीं हैं।

जय गुरूदेव

डॉ शिवाजी चौहान 'शिवा'
पूर्व उप–प्राचार्य
गुरूसराय–झांसी (उ.प्र.)

बुंदेली बिआव

—लक्ष्मी ताम्रकार

सबरे भारत देश में जागा–जागा बिआव केई–केई बरन को होत है। पर हमाय बुंदेलखंड के बिआव बहुतऊ नोने लगत हैं। जी को भावत हे, काय से हमाय इते जो नेग जोग होत हें, वे जी को जुड़ात हे। दमोह, सागर, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ इन शहरन में बुंदेलीखंडी गीतन से बाजे–गाजे से बिआव होत हैं। पीढ़ियन से हमाय बूढ़े पुरानन ने जोन जोन रीतियन बना दई हैं अबे लो उनई पे चलत हैं तनकऊं ढील ढाल नई होत है।

सबसे पेले बेटा बिटियन की कुंडली टीपना को मिलान करो जात है। गुन, मैत्री ओर भरकुट के मिलान जुरान से बातचीत आगे बढ़त है। मोड़ी का देखन के बाद मन नोनी लगवे से फिर घर को सयानो मोड़ी के हाथ में हथोना ओर ओली में मिठाई धर देत हैं। कोनऊ–कोनऊ बाजे गाजे से भी ओली भरत है, जीखों हम सगाई भी कत हैं या लड़की खों छेकवों कई जात है।

फिर सुदकरा से विआव सोदो जात है। बामन खों बुलाय कें लगुन लिखी जात है। गोबर के गनेश बनाय कें उन्हें पूज के चौक पूरो जात है फिर लगुन को लिखवों होत है। खबास लगुन खों लेके लड़का वारों के इते जात है जीके लिखे से वर याने दूल्हा के इते लगुन बांची जात है।

लगुन बचवे के बाद फिर मय्यानो होत है। खदनिया जाके उते की माटी लाई जात है, नरियल घी, गुड़ से उते की पूजा होत है ओर ओई माटी से मड़वा के नेचे धरवे खों चूल, चुलैया बनाई जात है।

इके वाद सीधो छुआव जात है देवी देवता और हरदोल लला खों पूजो जात है। फिर अरगौ, हरदी ओर तेल चढ़त है। तेल, हरदी के चढ़वे के बाद दूल्हा ओर दुलहेन कोनऊं फिर घर के बाहरे नई निकर सकत है। एक छोटो सी लोहे को चक्कू सबरे समय हाथई में लयरेत है।

मड़वा या खाम को काम जीजा या फूफा करत हैं खाम के तरें पांच या सात हरदी की गांठे, सुपारी, सवा रूपैया धरो जात है। छेवला की लकड़ियां भी रखी जात हैं। ओर मड़वा खों छाव जात है। मैहर के करवा भी पानी सें भरे मड़वा के तरें धरे जात हैं। मड़वा तरे से मेहर बनत है कंकन बंधत है ओर पुरखन खों नेवते दय जात हैं। आगी, पानी, दई, देवता, पेड़, पौधन, नदिया, पहाड़न सबखों न्योतो जात है।

बरात जावे के पहलऊ दूल्हा की राछ फिरत है घोड़े पे बैठके दूल्हा अपने पहिचान वारों के जात है। फिर दूल्हा की निकासी होत है। बिआव में आई सबई औरते तिलक करके दूल्हा की निकासी करती हैं। आरती उतारी जात हैं घी बतासे से मों मीठो करो जात है। बासी रोटियन के टुकड़न खों दूल्हा के ऊपर से फेको जात है।

बरात खों उनकी मनई सें जनवासो दओ जात है। और बरात जब दुलैया के दोरे में आवत है तो बिटिया को मामा दूल्हा को टीका करत है। फूल मालन से सबरे बरतयिन को सुआगत होत है फिर पौनछक दई जात है ओर मिरचवानी के बाद फिर मड़वा में बिटिया खों चढ़ाव चढ़त है। मायको की पीली साड़ी में भांवरे पड़तीं है। पांच फेरन के बाद पांव पखरई होत है। इके बाद कन्यादान होत है। बिछिया गसाई को नेग फुआ की बड़ी बेन करत है। मांग भराई दूल्हा करत है। धान बुआई को नेग भी होत है। कुंवर कलेवा को नेग भी होत है। मामा के हाथ से सजन पांत की पंगत होत है। केत हैं कि मरे हरदोल ने भी अपनी भनेजन खों भात दओ तो।

सबसे अच्छी सालियन के हाथन से दूल्हा की पनैइयां लुकाई को नेग होत है। पलकाचार ओर रहस बंधाई, दरवाजो छेंकवो, फागें ओर कंकन बंध छुड़ाई होत है। फिर बिटिया की बिदाई होत है। बिदा होवे के बाद भी दूल्हा दुलहन खों कई नेग करने पड़त हैं।

जैसे– देवी पूजा, मेहर पूजवो, हाथे लगावो, मोचाइनो, कंकना छुराई खिचड़ी बनावो आदि।

ऐसन–ऐसन संस्कारन से होत है हमाय बुंदेली बिआव थोरो लिखो बहुत समझियो।

लक्ष्मी ताम्रकार
दमोह

1857 के स्वतंत्रता-संग्राम में बुंदेलखंड की नारियों का योगदान

–डॉ. कामिनी

भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम कोई छोटी–मोटी लड़ाई नहीं थी। एक लंबी लड़ाई थी जिसकी प्रक्रिया सदियों चली।

'तारीख के पन्नों ने वो दौर भी देखे हैं,
लम्हों ने खता की थी, सदियों ने सजा पाई'

आजादी की लड़ाई में महिलाओं ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था। इतिहास साक्षी है कि भारत की नारी शक्ति ने विदेशी शासन का विरोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। बुंदेलखंड में सन् 1840–42 से ही सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। इस सुगबुगाहट को हाहाकार का रूप लार्ड डलहौजी की हड़प नीति ने दे दिया था। झांसी, जैतपुर, जालौन, छतरपुर सहित अनेक ऐसी देशी रियासतें थीं जहां अंग्रेजों ने विधवा रानी को रीजेंट तो माना किंतु उनके द्वारा गोद लिये पुत्र को वैध नहीं माना और उनकी रियासतों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। बुंदेलखंड में स्वतंत्रता–संग्राम में भाग लेने वाली महिलाओं पर विचार करते हैं तो गौड़रानी दुर्गावती ने मुगलकाल में सर्वप्रथम अपनी तलवार चमकाई थी। गौड़वाने की रानी दुर्गावती की अप्रतिम वीरता को इतिहास के पन्नों से कभी विस्तृत नहीं किया जा सकता।

1. बुंदेलखंड में छतरपुर जिले की लौंड़ी तहसील में एक ताल्लुका टटम है। वहां के जागीरदार बहादुरसिंह की पुत्री राजो थी। 1820 में राजो का विवाह पारीछत से हो गया था। उस समय दोनों ही अवयस्क थे। जैसे–जैसे पारीछत और रानी राजो वयस्क होते गये, अंग्रजों के प्रति उनकी घृणा और प्रबल होती गई। इनके कोई संतान नहीं थी, रानी राजो ने अपनी बहिन के लड़के जालिम सिंह को अपने पास रखा हुआ था, एक युद्ध में जालिम सिंह की मृत्यु हो गई थी। इससे महारानी राजो एकदम टूट गई थी इस निःसंतान दम्पति ने प्रजातंत्र की भावना से अंग्रेजों से संघर्ष किया था और प्रजातंत्र शासन के सपने को साकार करने के प्रयास में अपने प्राण होम दिये थे।

2. महारानी लक्ष्मीबाई का क्रांतिकारी व्यक्तित्व 1857 के स्वाधीनता समर के सेनानियों के लिए प्रेरणा का विषय रहा है। लक्ष्मीबाई बहुत दयालु और स्नेहिल स्वभाव की थीं परंतु मातृभूमि की रक्षा के लिए वे विदेशी शासकों के लिये मौत का फरमान बन गई थीं। बुंदेलखंड में लक्ष्मीबाई ही ऐसी शक्ति थीं जिन्होंने ब्रिटिस सत्ता से संघर्ष करते हुये आजादी की लड़ाई को व्यापक बनाया। वे अपनी वीरता शौर्य, त्याग, बलिदान के कारण एक किंवदंती बन गई हैं। प्रसिद्ध क्रांतिकारी और कवियत्री सुभद्राकुमारी चौहान की 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' कविता जन–जन की प्रेरणा–स्त्रोत बन गई।

3. लक्ष्मीबाई की सहयोगी वीरांगना झलकारी बाई का जन्म झांसी जिले के ग्राम भोजला में अनुसूचित जाति कोरी के परिवार में हुआ था। ये लक्ष्मीबाई की स्त्री सेना की अत्यंत विश्वस्त और योग्य सेनानी थी। जितनी खूबसूरत उतनी घुड़सवारी तथा अस्त्र–शस्त्र संचालन में निपुण। डॉ. वृन्दावन वर्मा ने अपने उपन्यास झांसी की रानी में झलकारी व्यक्तितित्व पर प्रकाश डालते हुये लिखा है– 'अंत में कोने में खड़ी हुई एक नववधू माला लिये बढ़ी।, उसके कपड़े बहुत रंग–बिरंगे थे, चांदी के जेवर पहने थी, सोने का एकाध ही था। सब ठाठ सोलाआना बुंदेलखंडी। पैर में पैजना से लेकर सिर की दाउनी तक सब आभूषण स्थानिक। रंग जरा सांवला।' झलकारी के सुगठित पुष्ठ शरीर को देखकर लक्ष्मीबाई ने उसे अपनी स्त्री सेना में भर्ती कर लिया था।

4. मोती बाई नृत्य एवं गान विद्या में पारंगत थी तथा लक्ष्मीबाई की महिला सेनानी के रूप में विख्यात थीं। झांसी के राजा गंगाधर राव की नाट्य शाला की कुशल अभिनेत्री भी थी। वह खुदाबख्स नाम के प्रसिद्ध तोपची से प्रेम करती थी। उसकी कर्तव्य निष्ठा, वीरता एवं साहस ने लक्ष्मीबाई को बहुत प्रभावित किया था।

5. मुंदर, लक्ष्मीबाई की प्रिय दासी और सहेली थी। बाद में स्त्री सेना में भर्ती होकर युद्ध के मैदान में रानी के साथ युद्ध में सहयोग किया। मुंदर दीवान रघुनाथ राव से प्रेम करती थी। ग्वालियर के युद्ध में एक अंग्रेज सैनिक की गोली लगने से मुंदर वीर गति को प्राप्त हुई थी। मुंदर का दाह संस्कार भी लक्ष्मीबाई के शव के साथ बाबा गंगादास की कुटिया में किया गया था।

6. जूही सौंदर्य और शौर्य की देवी थीं, वह अमर सेनानी तात्याटोपे से प्रेम करतीं थीं, जूही तोप चलाना जानतीं थी अपनी तोपों से उसने अंग्रेजी शासन पर गोले बरसाये थे।

7. इनके अलावा मथरा, बेनी, चंद्रावल, रत्नकुंअर के नाम भी लक्ष्मीबाई के विश्वासनीय सहेलियां में आये हैं। कवि "मदनेश" ने लक्ष्मीबाई रासो में इन सहेलियों का उल्लेख किया है।

8. महारानी अहिल्या बाई होल्कर का नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। अहिल्या बाई के दत्तक पुत्र तुकाजी राव के चार पुत्र थे, इनमें यशवंत राव बहुत वीर और पराक्रमी थे। इन्हीं यशवंत राव की पुत्री भीमा बाई थीं यशवंत राव ने अंग्रेजों से कई युद्ध किये थे। 1804 में चंबल घाटी में हुये भीषण युद्ध में कर्नल मोन्सुन को पराजित किया था। भीमाबाई को साहस और समय की पाबंदी अपने पिता से विरासत में मिली थी। भीमाबाई बुंदेलखंड की बहादुर महिला थीं।

9. इसी तरह बुंदेलखंड अंचल में जिन वीरांगनाओं ने राष्ट्रभक्ति की चेतना जाग्रत की थी उनमें अत्यंत प्रसिद्ध नाम रामगढ़ की बाई अवंतीबाई लोधी का भी है। कैलाश मड़वैया ने अपनी पुस्तक "बुंदेलखंड के इतिहास पुरूष" में लिखा है कि अवंतीबाई ने मूंगिया सेना तैयार की थी। इस सेना के सभी सैनिक मूंगिया रंग की वर्दी पहनते थे। रानी अवंतीबाई पुरूष वेश में साफा बांधे घोड़े पर सवार होकर तलवार चलातीं थीं।

10. यह बात बिल्कुल सच है कि वीरता किसी की धरोहर नहीं होती। वीरता, त्याग, शौर्य हृदय के कोने से उपजने वाले स्वाभाविक गुण हैं। मालती बाई लोधी एक ऐसा ही नाम है। बुंदेलखंड की वीरांगनाओं के इतिहास मे, जिसने सिद्ध कर दिया है कि वीरता राजघरानों के अलावा गांव, गमई, देहातों में भी जन्म ले सकती है और अपनी चमक से बड़ो-बड़ों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं। मालती बाई के साधारण तीर-कमान से लगाये अचूक निशाने को देखकर रानी लक्ष्मीबाई दंग रह जातीं थीं। मालती बाई की ग्रामीण सेना में 500 युवक-युवतियां प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। ग्वालियर जब लक्ष्मीबाई दामोदर राव को बांधे जा रहीं थीं। नया घोड़ा नाले पर अड़ गया था। रानी घायल हो गई थीं। उस समय मालती बाई रानी की ढाल बनी उनके पीछे-पीछे जा रही थीं तभी एक अंग्रेज की गोली लगने से उनकी मृत्यु हो गई थी।

11. सरस्वती बाई लोधी एक जनवरी 1855 को छावनी में शकुन्तला नाटक खेला गया। इस नाटक में सरस्वती ने शकुन्तला का अभिनय तथा छावनी के कप्तान थोरंटन ने दुष्यंत का अभिनय किया। थोरंटन सरस्वती के अभिनय से इतना प्रभावित हुआ कि विवाह का प्रस्ताव सरस्वती के समक्ष रख दिया। सरस्वती ने थोरंटन को मुंहतोड़ जवाब दिया था-'सुअर और सिंहनी' का संबंध संभव नहीं है। ऐसी थी बुंदेलखंड की नारियां।

12. जालौन की रानी ताईबाई ने अंग्रेजी सरकार की चुनोतियों के कारण लंबे समय तक संघर्ष किया था। रानी की क्रांतिकारी भावनाओं के कारण अंग्रेजी सरकार ने उन्हें बारह बरस तक कैद रखा था।

13. छतरपुर की रानी झड़कुंअरि अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करती थीं। उन्होंने तात्याटोपे की भी सहायता की थी।

14. महारानी बैजाबाई सिंधिया अस्त्र-शस्त्र चलाने में कुशल थीं। युद्ध का संचालन भी वे कर लेती थीं। वे एक महत्वाकांक्षी महिला थीं। नईम कुरैशी ने अपने एक लेख में लिखा है कि 'महारानी बैजाबाई' ने 1858 में मुरैना से ग्वालियर के बीच छोंदा ग्राम में अंग्रेजों से युद्ध किया था। उनकी याद के स्मारक छोंदा ग्राम में आसन नदी के किनारे आज भी बने हैं।

चेतना की चिंगाई जलाने वाली महिलाओं में अजीजन बाई, नारायणी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, रानी राजेन्द्र कुमारी, सहोदराबाई राय और श्रीमति सावित्री सक्सेना के नाम भी उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बुंदेलखंड की महिलाओं ने सन् 1857 से लेकर 1947 तक सतत रूप से योगदान दिया।

डॉ. कामिनी
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष हिन्दी
शासकीय गोविंद महाविद्यालय
सेंवढ़ा, जिला-दतिया (म.प्र.)

बुंदेलखंड की सांस्कृतिक धरोहर

श्रीकांत शुक्ल

बुंदेलखंड की अनेक वर्णी प्रकृति, नदी, पहाड़, पेड, खेत आदि का सौदर्य बेहद जीवंत एवं आकर्षक है। प्रागैतिहासिक कालीन चित्रों में तात्कालीन मानव के वास्तविक जीवन और चरित्रों की छाया स्पष्ट होती है घुमंत जीवन की प्रामणिक महागाथा का उल्लेख करते आदि चित्रों मे युग जीवन के समूचे परिदृश्य साकार होते है।

शैल–गुफाओं की छतों, दीवारों और बड़ी–बड़ी शिलाओं पर खनिज रंग से उत्कीर्ण चित्र, समाज की अनुभूतियों, उनके उत्साह और तड़प तथा मिलना–जुलना उनकी गति काम की तलाश, शिकार आदि को व्यक्त करते है। प्राकृतिक सौदर्य को देखकर असीम आनंद की अनुभूति आदिम जनों को हुई होगी। जिन दृश्यों जीव–जंतुओं का आकर्षण गहरे पैठ गया होगा, उसे आदिम घुमंतू परिवारों के आते–जाते प्रस्तरों को उकेरा होगा। पशुओं में नीलगाय, बैल, सांभर, हिरण, हाथी आदि के चित्र प्राप्त होते है। देवरा (छतरपुर) आवचंद्र (सागर) पांडव प्रपात (पन्ना) मानिकपुर (बॉदा) बाघार (झॉसी) आदि बुंदेलखंड के पर्वतीय गुफाओं में अनूंठे चित्र मिलते है।

मानव की सभ्यता के विकास के साथ–साथ भावनाओं,संवेदनाओं में निहित लोक मंगल की भावना के परिणाम स्वरूप वैदिक एवं पौराणिक पात्रों की कृपा तथा करूणा पाने के लिए दरवाजों में, भित्तियों में गणेश के चित्र अंकित किये जाने लगे, अन्य देवी देवताओं और घड़ा लिए सौभाग्यवती नारियों के चित्र शुचिता और शुभ के मूल्यों से जुड़े विश्वास को प्रकट करते है।

इन मूलवर्ती आख्यानों का सौदर्य बुंदेलखंड की संस्कृति का परंपरित मूल्य वन गया। भित्ति चित्रों में, उल्लिखित गजरोही और अश्वरोही राजा आदि के सौदर्य, लोक हदय की परख को जीवंतता से उदघाटित करते रहे है।

प्राचीन काल से ही लोकमानस में दुर्गा पूजा की प्रमुखता थी। ऐसी धारणा थी कि दर्गा पूजा से पृथ्वी उर्वरा होती है, और नये शस्य से भंडार भरता है। नवदुर्गा के समय कुँआरि कन्याओं को चबूतरों पर सुअता बनाना एवं अगल–बगल सूर्य एवं चंद्रमा की आकृति धरती और नारी दोनो की रक्षा के लिए, अशुभ पर शुभ शक्ति की विजय की कल्पना का परिणाम है। बुंदेली लोकमानस ने शरद ऋतु की हरितमा का भी खूब स्वागत किया है। हलछट, अमावस्या (श्रावण मास), इसे हरियाली अमावस्या भी कहा जाता है हमारे यहां बहुत से देवी–देवताओं का संवंध भय से भी है दुख एवं उत्पात से बचने के लिए नागपचंमी के दिन "नाग" की पूजा की जाती है, दीवाल पर दरवाजे के दोनो ओर गेरू या गोबर से पांच या सात नाग आकृतियां बनाई जाती है। स्थल–स्थल पर पंख फैलाये मोर का चित्राकंन भी सर्प–भय से अभय प्रदान करने की कल्पना का परिणाम है। पर्वो त्यौहारों से जुड़े अनेक संदर्भो को आत्मसात कर स्थानीय निजता रंग में रंगे अनेक चित्रों की उदभावना यहां के लोगों ने की है। उदाहरणार्थ– त्रिदेवों का चित्र, सत्रह पुतरियो (आठ दिक्पालो और नौ ग्रहों के रूप में) इन्ही के साथ हुरसा–वेलन, ककई, ककवा, मीर, स्वास्तिक, गणेश, थैला,–करवा, फूल स्थाऊ, शीतला देवी आदि।

कुछ लोक रंगों का महत्व समाज–शास्त्रीय पड़ताल करने पर स्पष्ट होता है करवॉ चौथ, की पूजा के लिए दीवाल पर गोबर से लीपकर चावल के छोल या रंगो द्वारा बनाया गया करवा चौथ का चित्र दांपत्य–जीवन में नारी की निर्णायक भूमिका को दर्शाता है।

प्रकाश स्त्रोत सूर्य एवं चंद्र के चित्रों में मानवीय संवेदना की सच्चाई निहित है सूर्य, चंद्र के चित्र तमाम विसंगतियों के बीच, सद्‌भावना, ज्ञान और सत्य के साक्षी बनकर प्रयोजन की सार्थकता को पुष्ट करते । सूर्य, चंद्र का उल्लेख करते हुऐ इन्हें लोक गीत में साक्षी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बुंदेलखंड में पूजा, व्रत, त्योहार, वर्षगॉठ आदि में चौक या सुरेती की सरंचना, शुभ सौदर्य की प्रतीति कराते हैं। इन लोक छपियों को अपनी–अपनी लोग शैली के अनुरूप नये–नये आकृतियों में धरती परं बनाया जाता है। गाय के गोबर से लीपकर आटे के द्वारा चतुष्कोणी आकार में इसका अंकन होता है। इस चतुष्कोणी के सौदर्य को अधिक सुंदर एवं आकर्षक बनाने के लिए हल्दी, अबीर, गबेरी,

पीरोठा और चावल आदि को बीच–बीच में भरा जाता है। रूपाकृति का यह कौशल अपनी अनुपम घटा में. आस्था और विश्वास का सज्जित चित्रपट ज्ञात होता है। चौक पर कलश रखा प्रेम और सौदर्या से स्निग्ध आत्म सम्मान से दिया, आभा प्रतीत होता है। लोकपरक आस्था के घनीभूत उमंग तथा उल्लास से परिपूर्ण चौक और कलश की बहुरंगी छवि में, लोग जीवन की उन्नति भावना प्रकट होती है।

रंगोली और चौक से भिन्न बुंदेलखंड में "सुरेता" का रेखांकन महत्वपूर्ण है सुरेती का आकार गोल, चौमुखी और चकाकार होता है। सुरैती अंकन के समय विभिन्न रेखाओं को बड़ी सावधानी से खींचा और मिलाया जाता है, धन चिन्हों की गणना की जाती है ताकि सही सुरैती बने। सुरैती अदृश्य देवता का स्वरूप होती है। जो आस्था को साकार करती है। इनमें स्थिति और आकार चिन्हों के द्वारा विभिन्न देवी देवता की आकृति उकेरी जाती है शुभ मंगल सुरैती का अंकन प्रायः पूजा स्थल की दीवारों पर होता है हिन्दी, रोटी, पीरोठा, गेवरी, सिंदूर चावल और आटे के घोल आदि के रंगो का प्रयोग इनके अकंन में होता है बनावट में अंतर होने पर रंगों भी शिल्प शैली से प्रतीत होता है कि जैसे मंदिर के अंदर देवता की मूर्ति स्थापित की गई है।

गोदना बुंदेली खंड का चर्चित कला प्रवाह है यह चित्रण सामान्य जनों अधिक प्रभावी है। महिलाएं पीडा सहकर भी गोदना गुदवाती है लोकगीतों में गोदना की संवेदना का भी वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थः–

"बडें कठिन के गुदना बाई, गुदवाये ते उदना री,
मीज गई असुअन सारी।
मैने मौतऊ करे बहाने, मोरे मात पिता खिसयाने ,
जो ना मोहे तनक पुसाने"
पूरी ललक भई गुदनन की, बहियां दिपन लगी प्यारी।

गोदना के माध्यम से विभिन्न फूल पत्तियों के चित्र अंकित किये जाते है हिरन आकृति एवं मयूर का चित्रांकन वंशीधर आदि गोदना के माध्यम से रूपायित होते है। पुतरियां, वंशीधर, श्रीकृष्ण, शिव की आकृतियॉ प्रायः हाथ मे गोदी जाती है। बुंदेलखंड के विविध गीतों एवं लोक कलाओं में आभूषणों का महत्व प्रतिपादित भावुकताओं के चित्रण मिलते है। लोक कवि ईसुरी ने कुछ बुंदेली जेवरो की झलक प्रस्तुत की है। उदाहरणार्थः–

"जिदना रजऊ परैती गानो, जियरा जात विरानों।
सरमाला लल्लरी विचौली,मोंहरन हार सुहानो।
पावन चोरा पैजना वोरा,जानक जिया लुभानो।
ईसुर देत वदन अति शोभा,जब चोली बंद तानो।"

बुंदेलखंड में मूर्तिकला का लालित्य भी महत्वपूर्ण है। यह लोक कला सहज ही लोकमानस द्वारा परिकल्पित देवी–देवताओं, भूत–प्रेत आदि रूप में विश्वास के रूप में धार्मिक जीवन के रूप में स्थापित होने वाली मूर्ति का अंग बन गई है। मंगल और शुभ हेतु इनकी पूजा की जाने लगी। धातुओं के अतिरिक्त मृतिका के विशेष व्रत, उपवास और पूजा अनुष्ठान आदि अवसरों को आधार मानकर आटा गोबर की पुतलियों को प्रतीक मान भूत–प्रेत की पूजा बुंदेली जन–जातियों में महत्वपूर्ण है।

"गडिया घुल्ला" शक्कर से बना यह खिलौना बुंदेल खंडी रीति रिवाजों की विलक्षण सी उपस्थिति है। मूर्तियों,वर्तन जेबर आदि ढालने का काम प्रायः तमेरे लुहार, सुनार आदि जाति के लोग करते है। काष्ठ कला में कुशल बढ़ई जाति के लोग अधिक होते है। इसी प्रकार मिट्टी के वर्तन,मूर्ति और खिलौने आदि बनाने का काम जाति के लोग करते हैं। वांस के द्वारा बनाई जाने वाली घरेलू वस्तुओं को बनाने का कार्य बसोर जाति के लोग करते है।

बुंदेलखंड में विवाह के अवसर पर वर एवं वधू एक–दूसरे के यहॉ से पकवान और मिठाईयॉ भेजी जाती है, जिस पात्र में यह रखी जाती हैं उसे टिपारा कहते है। इसे समरौती भी कहा जाता है।

बुंदेलखंड में लोक नृत्य के अलग–अलग रूप अलग–अलग जातियों द्वारा व्यक्त किये जाते है। संक्षिप्त नामनिरूपण निम्न लिखित है, शैला नृत्य, शैताम नृत्य, करमा नृत्य, सैरा नृत्य, दिवारी नृत्य, राई नृत्य, रावला नृत्य, दिमरया नृत्य, अहीरो का नृत्य, दिवारी नृत्य,मेला नृत्य,देवी नृत्य, हिजडो नृत्य, आदि।

नाम : **श्रीकांत शुक्ल** एम.फिल.(हिन्दी)
पता : श्री जगदीश मंदिर गढ़ी,अमरपाटन
जिला :– सतना (म.प्र.) 485775
मो.:– 9981001165

नवरस व्यंजना से मीठे, बुंदेली षटरस व्यंजन

– श्रीमती चंदा खरे

साहित्य में काव्य के रसों की तरह ही खट्टे,मीठे नमकीन चिरपिटे कसैले और कड़वे षट्रसों का भी स्वादिष्ट भोजन में अपना महत्व है। अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति में "पिज्जा और बर्गर 'फास्ट फुड' का चलन हमारे स्वास्थ्य को आज कहां ले जा रहा है। जबकि बुंदेली स्वास्थ्य विज्ञान की रोगों से मुक्ति की कुंजी उसके संतुलित भोजन में ही है। इसकी बारहमासी कहावतों और लोकोक्तियों की नियमावली में शतायु और अल्पायु का रहस्य छुपा है। कहा है:–

सावन ब्यारी जब तब कीजै,मादों बाकौ नाव न लीजे।
क्वांर के दो पाख, जी जतन जतन सों राख
कातक मास दिवारी, ठेलम ठेल ब्यारी।

अनुभवी लोक जीवन में बारह माहिनों में ऐसे सेवनीय और असेवनीय खाद्य सूत्रों से व्याधि नियंत्रण संभव है।

संवनीय:– **"मीठी चैते चीमरी, बैसारवे मीठो मठा,**
जेठ मीठी डोबरी, असाढ़ मीठे लटा।
सावन मीठी खीर खांड, मादों मुंजे चना
क्वांर मीठी काकरी,ल्याव कारी टोर कै।
कातक मीठी कुदई,दही डारो मोर कै।
अगहन खाव जूनरी, मर्ता नीबू जोर कै।
पूस मीठी खीचरी,गुर डारों फोर कै।
माघ मीठे जोड़ा बेर,फागुन होरा बालें।"

यह ग्रामीण "मीनू" है। ये डोबरी और लटा क्या है

डोबरी (डुबरी)– महुओं को उबालकर चम्मच से खूब घोंटें फिर इसमें सिमइयां और मेवा मिला दें।

लटा:– महुओं को भूनकर गरम गरम कूट लीजिये। फिर इसमें आधा खोवा भूनकर मिला दें ऊपर से पिसी काली मिर्च,किसी गरी, चिरोंजी। मिश्रण की टिकिया ही लटा है। एक और सेवनीय सूत्र याद रखने योग्य है:–

कातक दूध, अगहन में आलू। पूस पात और माघ रतालू।
फागुन में शक्कर जो खाये। चैत्र ऑवला कच्चा खाये।
बैसारवे जो खाय करेला। जेठ दाख,असाढे केला।
सावन निशि में जब तब खायें। भादों ब्यार कबहु नाहिं पावें।
क्वांर कामना देय बचाय। तो शत वर्ष आयु हो जाय।

इस विधान–सूत्र के साथ निम्नांकित निषेध नियम भी याद रखना जरूरी है:–

चैत गुड़ बैसारवे तेल।महुआ जेठ असाढ़े बेल
सावन साग,न मादों मही। क्वांर करेला कातक दही।
अगहन जीरा,पूस धना। माघ में मिश्री फाग्गुन चना।

ये व्यावहारिक सावधानियॉ दीर्घ गहरे लोकानुभव की उपज हैं। इसी तरह विविध बुंदेली खानपान, रीति–रिवाज, हमारी संस्कृति के अंग है यही बचाव लक्षण, बाहर भी हमारी पहचान बन जाते है और बाहरी लोग इस अंचल में आकर इसके आकर्षण में बंधे जाते है। उनमें से कुछ प्रतिष्ठित बुंदेली व्यजनों का परिचय प्रस्तुत है:–

तस्मई:– साबूदाने की पतली खीर जो 1 किलों दूध में 1/4 पाव साबूदाना पकाकर शक्कर, मेवा मिलाकर बनाई जाती है।

मुरका:– बराबर बराबर महुआ और तिली भूनकर, ठंडा होने पर हल्का कूटकर मिलाने से तैयार होता है।

इंदरसे:– चांवल, दो दिन पानी में फुलाकर पीसकर उससे आधी पिसी शक्कर मिलाकर दूध में सान लें। 6 घंटे बाद टिकिया बनाकर उनपर पुस्तादाना (खसखस) लगाकर शुद्ध घी में तले।

माल पुआ:– गुड़ के घोल मे आटा मिलाकर एक दिन बाद उसमें सौफ, काली, मिर्च, चिरोंजी डालकर छोटी छोटी पूड़ियां बनाकर तैया में खूब घी से तलें। लाल होने पर निकालें।

मलाई पूरी:– 1 किलों शक्कर की चासनी में आधा कि. खोवा और 250 ग्राम मैंदा फेंटकर देशी घी में एक चम्मच घोल डालकर लाल होने पर सेंकते जाऐं।पूरी तैयार।

चना–महुआ:– दोनों को भूनकर मिलाकर यह व्यंजन बनाया जाता है।

निगौना:– हरे चने को पीसकर कढ़ाई में भूनकर नमक हल्दी. मिर्च,धानिया. लहसुन प्याज मिलाकर तेल में सब्जी बनाऐ।

बरा:– बुंदेलखंडी शदियों का अनिवार्य व्यंजन है, जो उड़द की दाल को फुला–बांट कर, टिकिया तेल में तली जाती है। इसे मट्ठे को राई से छोंककर बनाए "रौ" में डाला जाता है।

खड़बरा:– यह मीठा होता है। आटे के घोल को कढ़ाई में हलुआ जैसा होने तक चलाएं। फिर ठंडा होने पर उसकी छोटी टिकिया बनाकर, घी में तलें और चाशनी में मेवा सहित डालें ।

भंगरी:– कुदई को पानी में पकाकर मांड निकाल देते हैं। फिर भुनी तिली इसमें डालकर नमक मिलाकर ठंडा होने पर मेवा मिला देते हैं।

धैंगो:– चावल को पकाकर उसमें भुने चने पीसकर डाल दें, दोनों को फेंटकर नमक मसाला डालने से तैयार।

बुंदेली कूची:–तिली और गुड़ मिलाकर कूटिये। फिर अदरक किसकर डाल दें। आपस में मिलने तक फिर कूटिये।

जुंडी शोरबा:–प्याज, लहसुन, साबुत धानिया को भूनकर पानी संग सिल बट्टे से पीसें। नमक मिलाकर शोरबा तैयार।

औंरिया:–ऑवला की कलियां तलकर, पीसकर पानी में घोल तैयार करें। कढ़ाई में हींग मैथी से छौंकें हुए बेसन के, पके घोल में आंवले का गाढ़ा घोल डालने, से कढ़ी जैसा बनेगा।

कौंरी:– ज्वार और गेंहू को अलग–अलग ज्वार के हरे भुने दानों को पानी में उबालकर फिर दूध में उबालें। फिर शक्कर या गुड़ डाल दें।गेंहू को ऐसे ही उबलकर मीठी कौरी बनती है।

फुलौरी:–उड़द की दाल और चांवल दोनों के आटे के गाढ़े घोल की मगौड़ी तलें। फिर नमकीन मट्ठे में एक घंटा डला रहने दें, बारीक प्याज इमली की चटनी संग परौसें।

बिड़ई:– हरे चने को महीन पीस लें और आटे में मसाले डालकर गूंथ लें। फिर आटे की दो टिकियों के बीच चने का पेस्ट भरकर रोटी की तरह बेल कर सेंकें।

श्रीकंचन (गूंजा):–भुने चने के आटे को पानी में घोलकर, तेल में जीरे से छोंककर चलाएं। फिर उसमें महुआ, सिमइयां या चावल डालकर पकाएं व मसाले मिलाएँ।

कुदवा का घोरूआ:– कोदों का आटा मठा में घोलकर बिना तले की कढ़ाई में सिमइया या चावल डालकर पकाएं।थोड़ा गाढा होने पर नमक डालकर उतार लें।

बफौरी का साग:–भीगी मूंग की दाल को पीसकर नमक, धानिया,मिर्च मिलाकर पेस्ट बना लें। गरम पानी भरी पतीली के मुहं पर कपड़ा बांधकर, उस पर पकौड़ी की तरह तोड़कर, थाली से ढक दें। भाप में पक जाने पर पलटें। कढ़ाई में तेल मसाले सहित बफौरी डालकर चलाएँ फिर पानी डाल दें। थोड़ी देर में गरम मसाला हरी धानिया डाल दें।

बरौनियां (करारी कढ़ी):–मूंग की भीगी दाल पीसकर, आधी दाल में हरी मिर्च नमक डालकर तेल में पकौड़ी बना लें। शेष आधी दाल मट्ठा में घोलकर नमक,धानिया मिर्च,हल्दी,डालकर थोड़े तेल में मैथी से उसे छोक दें। उताकर पकौड़ी उसी में डाल दें।

झरिया की कढ़ी (झर कढ़ी):– बेसन में नमक मिर्च,हल्दी डालकर पानी में घोल दें। फिर दूसरी पतीली में उबलते हुए पानी में झरियां से घोल के बूंदी–सेव निकालें। उसका तीन भाग मठा में घोलकर हींग मैथी से छोंक कर नमक मिर्च धानिया डालें। शेष चौथाई सेव को कढ़ी उतारते समय डालें।

चौरोला:–ज्वार के आटे को गुड के घोल में कड़ा गूंथ लें उसमें चिरोंजी डालकर पूड़ी बनाए और तेल में तलें।

ठडूला:–मंगू,उड़द, गेहूं और चांवल के मिश्रित आटे में मसाला मिलाकर,गूंथ कर, पुड़ी बना लें। और तेल में तलें। ठडूला तैयार।

गारमा:– गंजी के ऊपर कपड़ा बांधकर उस पर दही, दूध, शक्कर, कपूर, इलायची, खोवा डालकर मथते हैं। छानकर बर्तन में पहुंचने पर उसमें सूखा मेवा मिला देते हैं।

रसयावर या रसखीर:– गन्ने के रस को गरमकर, उसमें चांवल डालकर पकाएं, फिर मेवा–मसाला मिलाए।

आंवले की सब्जी:– आंवले का चूर्ण बेसन, नमक जीरा मिला कर सान लें। इसकी लोई, दबाकर लंबा कर तेल में सेंकें और गोल काट लें। कढ़ाही में उन्हें मसाले में भूजकर पानी में उबालें।

ये कुछ खास बुंदेली व्यजन हैं। इनके अलावा कई आम व्यजनों से महिलाएं परिचित हैं और बनाना जानती हैं। जैसे:- गकरियां, पुआ, गुलगुला,तेली, मंगौरी, मीड़ा बिजौरा, खीचला, सेव, खुरमा, खुरमी, बिर्रा की रोटी, बेसन के लड्डू, पुड़ी का हलुआ सूजी का हलुआ, चीला, सतुआ, बिरचुन आदि। बुंदेलखंडी त्योहारों पर अनेक व्यंजन बनाये जाते हैं, जिसमें से कुछ इस प्रकार है।–

गणगौर– गनगौरा आसें, अठवाई, हरछट लटा।जन्माष्टमी–पंजीरी, सुरौता। हरितालिका (तीजा) गुजिया, पपड़िया। महालक्ष्मी सुरा। ग्यारस– लप्सी, कुमड़ खीर। संक्रांति– तिल के लड्डू, खुरमा, सलौनी, (मठरी)। होली– बरूला आदि।

इन व्यंजनों को यदि 'मेला–स्टाल' पर सजा दें, तो विदेशी ऊगंलियां चाटते हुए, फाइव स्टार भूल जावें।

श्रीमती चंदा खरे
73 विवेकानंद नगर,दमोह (म.प्र.)

(बुंदेली कहावत की कहानियां)

लेना एक न देना दो

'श्री मेहबूब अली''

एक शिकारी जाल लेकर किसी नदी पर गया। उसने मछली पकड़ने के लिए नदी के पानी में जाल फैलाया, मछली फांसने के लिये जाल को हिला कर पानी के बाहर खींचा। उसके जाल में एक बड़ा कछुआ फंस गया, उसने घबराकर शिकारी से कहने लगा– हे शिकारी भाई,आप अगर हमें छोड़ दें, तो मै आपको बड़ा जाल लाकर दूंगा। शिकरी ने कछुऐं को छोड़ दिया। कछुआ पानी में गोता लगाकर बाहर आया। उसके मुंह में एक बड़ा जाल देखकर शिकारी खुश हो गया। कछुआ शिकारी को जाल देकर नदी में चला गया। जाल लेकर शिकारी घर आया, उसकी पत्नि, जाल पाकर बहुत खुश हुई। उसके मन में आया, कि अगर एक जाल और मिल जाये तो बड़ा अच्छा होगा। शिकारी दूसरे दिन दूसरा जाल पाने के लोभ में जाल लेकर नदी पर गया, तब कछुआ बोला कि हमने आपको जाल दिया,पर तुम फिर मुझे पकड़ने आ गये। शिकारी ने दूसरा जाल मांगा, कछुआ समझ गया, कि इसे लोभ आ गया है, इसे कई जाल दे दिये जाये, तो भी यह मांगता रहेगा। कछुआ ने कहा कि तुम मुझे पहले वाला जाल लाकर दो, तो मैं उसी के बराबर दूसरा जाल दूंगा। शिकारी ने झट से जाल लाकर कछुआ को दे दिया। कछुआ जाल लेकर पानी में, यह कहते चला गया कि तुम्हें एक लेना नहीं है और मुझे दो देना नहीं है। लेना एक ना देना दो।

2. पानी का धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में,

एक ग्वालन पानी मिलाकर दूध बेचते–बेचते नाक में पहनने के लिये सोने की एक नथ बनवाकर उसे पहना करती थी एक दिन वह कुऐं पर झुक कर कुऐं से पानी भरी बाल्टी खींच रही थी, तभी उसकी नाक की नथ खुलकर कुऐं में गिर गई। दूध में पानी को मिलाकर बेचने से उसे बहुत लाभ हो रहा था। इस प्रकार वह बेईमानी से कमाई कर रही थी। इस बेईमानी के पैसे से उसने नथ बनवाई थी, वहीं नथ आज पानी में गिर गई उसके मुहं से अचानक निकल गया पानी का धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में दृष्टव्य है कि बेईमानी की मोटी कमाई से जो मोटी नथ बनवाई थी जिसे नाक सभंल ना पाई और नाक को फाडती हुई कुऐं में गिर गई।

श्री मेहबूब अली
सेवानिवृत प्रधान पाठक
बटियागढ़ (दमोह)

बुंदेली चौकड़ियां

होरी कड़ी जात है कोरी,नईं खबर लई मोरी
घर होते तो नौनो लगतो,मिल लेते छुप चोरी
आंख बचा सबकी आंखन से,मुस्का लेते थोरी
कॉत गुपाल पढ़त ही चिठियां,चिठियां दइयो गोरी।

चिठियां मिली बड़े भुनसारे, खोलत मोय किवारे
पंखा होते उड़ आ जाती,जल्दी पास तुम्हारे
एक दिना की छुट्टी लेके,तुम आ जाओ सकारे
रोज गुपाल काम हैंराने,चैन न तुम बिन प्यारे।

कैसे आ जइये हम गोरी,आफत में दम मोरी
बाई से बापू जा कैरये,रिस्ते दारी टोरी
नई दओ तोरे दद्दा ने,जो कईती मुंह फोरी
कात गुपाल धरा ले पइसा,तब लेहै सुध तोरी।

घर से जा डरवा दो चिठियां, बुला लेब तुम बिटियां
खेती पाती ढोर बछेरू,बेची टाठी लुटियां
गाने से मौड़ी खां मड़ दओ, खाली करके कुठिया
कात गुपाल लुबाकर कैबी,लुट गये बची न छुटियां।

गोपालदास रूसिया
स्वंतत्रता संग्राम सेनानी
हरिहर रोड, हरपालपुर

– शंकर दयाल खरे 'शंकर'

घरी बिदा की आई

दओ दायजौ बेला सौंपो,
घरी बिदा की आई।
रो–रो कैरई आज मताई,
'बिटिया भई पराई।।'

जनम दओ बारे सें पालो
आंचर–दूद पिलाओ।
तींते में खुद सोये,
इनखां सूके कुदई सुबाओ।

पीरे करकें हांत खुदइ हम,
पर–घर रए पौंचाई।
रो–रो कैरइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

कन्या खां पराओ धन मानें,
पालें पर–घर लानें।
इतनों तौ हर कोऊ जानें,
परहै ब्याव रचानें।

चली आई जा रीत पुरातन
जैठन जौंन बनाई।
रो–रो कैरइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

दद्दा रो–रो बेसुद हो रये
अंसुबा ढारै बाई।
भैया कौ दुख कओ न जावै,
दुखी भौत भौजाई।

लिपट–लिपट सब सखियां कावें,
'दइयौ नई बिसराई।'
रो–रो कै रइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

काकी–दादी सब समजावें।
बेटा!नौंने रइयौ।
दोउ कुलन की लाज राखियौ,
दाग लगन नइँ दइयौ।

बनी प्यारी रइयौ सबकी,
मोरी प्यारी बाई।
रो–रो कै रइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

सास –सुसर–पति सेवा करियौ,
कारियौ नइँ मनमानी।
बूड़े–बड़े सबइ आसीसें,
रैहो बनकें रानी ।.

बैठ "मिआनें" चली मुनैयां
बाजत जात बधाई।
रो–रो कै रइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

बिटिया की हर बात याद कर,
सिसकी भरत मताई।
रोटी बना–बना को परसै,
कैहैं–"खालो बाई"।

को पूजा कौ चौक पूरहै,
बेलै को अठवाई'?
रो–रो कैरइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

सजीं–धजी जे धरीं पुतरियां,
देखौ कैसीं हीड़ें।
गेर–गेर वे हेर–हेर कें,
रो–रो अखियां मींड़ें।

सबसें पूँछें– हमें छोंड़कें –
कॉ गइ सखी हमाई?
रो–रो कै रइ आज मताई।
बिटिया भई पराई।।"

दूल्हा बाबा मार्ग,
अवस्थी बंगला के पास
नौगांव (छतरपुर)

लोक साहित्य परंपरा और बुंदेली भजन

डॉ. रीताकिशोर खरे

लोक का अभिप्राय सामान्य जन–जीवन से है। जनजीवन के अंतर्गत जो भी आता है। वह लोक की धरोहर बन जाता है। लोक परंपरा में सामान्य जन जीवन के टट्के अनुभव गुंफित रहते है। लोक में हर अंचल की अपनी परपंरा होती है। अपनी संस्कृति होती और हर अंचल की आत्मा होती है। इसी आत्मा को जीवन मूल्य अनुभव के सहारे आगे बढ़ाते है। और धरोहर के रूप में अगली पीढ़ियों को सौंप दिये जाते हैं। लोक की दृष्टि स्वच्छंद होने के बाद भी निश्छल होती है। लोकमन आस्था और विश्वास के मार्ग पर आगे बढ़ता है लोक कंठ की गुनगुनाहट मनोवृत्तियों का परिष्कार करते हुए मानव की संवेदनाओं को बचा सकता हैं। लोक के साथ लोक–जीवन हैं। लोक जीवन का उल्लास झरनों के स्वभाव वाला है। जो कल–कल करता हुआ बहाव बन जाता है।

लोक भजनों का लोक–जीवन से प्रगाढ़ रिश्ता है। लोक–भजनों की प्रेरणा का सीधा–सीधा संबंध अनुभूति से है और यह अनुभूतियां समाज में भावना, सरसता, करूणा और संवेदना की सृष्टि करती हैं। लोकभजन जन जीवन में घुले मिले रहते हैं। लोक–जीवन में आस्था का स्थान सबसे ऊँचा है। लोक भजन की उपासना की एक पद्धति है। कबीर से लेकर वर्तमान तक यह परिपाटी चली आई है। इसमें साधक का मन अपने आराध्य के चिंतन में समर्पित हो जाता है 15 वीं शताब्दी में कबीर ने लोक को केन्द्र में रखकर निराकार ब्रहम की आराधना की। कबीर के भजन लोकभाषा में समाज में आज भी प्रचलित हैं। कबीर अपने मन को संबोधित करते हुए चेतावनी देते हैं, संसार तो भ्रम और माया जाल है। ये जीवन क्षण भंगुर हैं– और माया भ्रमना। दया–धरम और ब्रह्म का ध्यान ही सार तत्व है:–

"अरे हाँ रे बंदे दया तौ राखौ मन में।
दया–धरम औ भजन बंदगी,राय जपाकर मन में।।
काठ की नांव समुद में डारी, उतर जात पल छिन में।।
कोंड़ी–कोंड़ी माया जोरी, जोर धरी बर्तन में।।
सुख संपत सपने की माया, चली जात पल छिन में।
कहत कबीर सुनौं भई साधो, रै गई मन की मन में।।

कबीर के पुत्र कमाल ने भी ईश्वर के नाम की चूनर ओढ़ने के लिये संकेत किया है:–

काये ना घुवाई चूनर, काये ना घुबाई रे।
बालापन की मैली चूनर, प्रथम दाग लग जाई रे।
अंत कपट के दाग न छूटे, घुबियन कें फिर आई रे।
राम नाम के साबन करले, कृष्ण नाम दरयाई रे।
घूँघट के पट खोल बहुरिया, आयौ गमन नगचाई रे।
बृद्ध भये तन डोलन लागे,आयौ गमन नगचाई रे।
चालनहार खड़े दरवाजे,करनी कों पछताई रे।
कहत कमाल कबीर के बालक, दृग अंजन जाई रे।
संत नाम की ओढ़ लै चूनर,चली अकेली जाई रे।।

हर अंचल के अलग–अलग भजन हैं। इसी आँचलिक परंपरा में बुंदेली फागों और चौकड़िया का अलग–अलग चमत्कार हैं। चौकड़िया फाग–रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि बुंदेलखंड के गांव–गांव में उसके स्वर गूँज उठे और लोक मन में ऐसी हिसारे उठी कि लोक का तन–मन सरबोर हो गया। ईसुरी,ख्याली राम और गंगाधर व्यास की वृहत्त्रयी लोक प्रसिद्ध है।

ईसुरी– ईसुरी बुंदेल भूमि की अनमोल निधि हैं। अपने काव्य में इन्होंने प्रेयसी के लिये काल्पनिक नाम 'रजऊ' का प्रयोग किया है। रजक का प्रेम ही अंत में राधामय हो गया। ईसुरी का कृतित्व फाग के फड़ों का अजस्त्र जीवन स्त्रोत सिद्ध हुआ। ईसुरी ने श्रंगार गीत भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि विविध विषयों की फागें लिखी हैं। ईसुरी वृन्दावन में जाकर राधा कृष्ण का भजन करने के लिये मन को उद्‌बोधित करते हैं–

"चल मन विन्द्रावन में रइये, कृष्न राधिका कइये।
झाड़ूदार होय गोकुल के, गैलें साफ बनइये।
जे दुआरे देवतन खाँ दुरलम,तिनें बुहारू दइये।
बचे–खुचे ब्रज जन के टूंका, माँग–माँग खइये।
'ईसुर कहत दरस के लानें, का का मजा दिखइये।।

एक दिन प्रान पखेरू उड़ जानें, इसलिये ईसुरी कहते हैं:–

जिदना मन पंछी उड़ जानें, डरौ पींजरा रानें।
भाई ना जैहैं, बंद ना जैहैं, हंस अकेला जानें।
ई तन भीतर दस द्वारे हैं,की होकें कड़ जानें।
कैवे खों हो जै है 'ईसुर' ऐसे हते फलाने।।

गंगाधर व्यास:– मऊरानी पुर निवासी श्री बाल

मुकुंद दर्जी इनके कविता गुरू थे। व्यास जी कवित्त, शेर, ख्याल और फागें प्रचलित छंदों में लिखते थे। छतरपुर, चरखारी, मऊरानीपुर, महोबा, बिजवार आदि नगरों में उनकी रचनाओं के मंडल थे। नटनागर कृष्ण की मनोहारी छबि–देखकर गोपियाँ पनघट की सुध भूल गई।

"झाँकी देखी नागर नट की, सुधि भूली पनघट की।
भाल विशाल तिलक केशर कौ, दमकन मोर मुकुट की।
आनन अमल कमल दल लोचन,चितवन चंचल खटकी।
अब नई और नजर में भावै, मन मोरे में अटकी
गंगाधर मोहन ने हम पै, अजब मोहनी पटकी,

ख्यालीराम:– फाग साहित्य में इन्होंने श्रंगार रस का पूर्ण परिपाक तो किया ही हैं। भक्ति और ज्ञान की गंगा भी बहाई हैं :–

ऊधौ मन मोहन ना आवें, निठुर भये सर सावें।
हमकों जोग,भोग कुब्जा कों,जा नई राय चलावें।
जबसें गये खबर ना भेजी, नई संदेश पठावें।
आपुन जाय द्वारका छाये, कुब्जा कंठ लगावें।
कवि ख्याली इतनीं ब्रजवाला, मृग छाला कों पावें।।

पं. परशुराम पटैरया:– इनकी कुछ चौकड़ियाँ बहुत प्रसिद्ध थीं। जिनमें फड़ में गाये जाने योग्य फागें भी हैं।

'रघुवर राखौ लाज हमारी, आये शरन तुम्हारी।
औगुन अमित भरे अघ में, कपटी कुटिल अनारी।
सो औगुन प्रभु लेत न जनके, ऐसे हैं हितकारी।
समदरसी हैं नाम तुम्हारो, आरत हरन खरार।
भालु सुकंठ विभीषण उबरे, गौतम की तिय तारी।
परसराम निज दरसन दीजे, अपनों जान भिकारी।

सूरश्याम तिवारी चंद्रसखी:– लोक कवि के रूप में सूरश्याम तिवारी 'सखी सम्प्रदाय' के थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में राठ को राधापुर के नाम से अभिहित किया हैं। आपने चारों धाम की यात्रा पैदल की थी। इनकी 'मन आनंद करन फाग' पुस्तक में सूरस्याम, चंद्रसखी तथा जमुनादास के नाम की फागें और भजन संकलित है। पर ये सब इन्हीं की रचनायें हैं। चंद्रसुखी स्त्री है या पुरूष ? कोई अभी तक निश्चित रूप से नहीं कह सका। विद्वानों ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सूरे (सूरश्याम तिवारी) ही चंद्रसुखी थे। इन्होंने 1. अधर फाग 2. मन आनंद करन फाग और 3. प्रात विलास, तीन पुस्तकें लिखीं। ये सभी फागें श्रृंगार,भक्ति और शाँत रस से ओत–प्रोत हैं।

सजनी हरि बिन फागुन फीके, हमें लगें ना नीके।
लिख राखी विरहा की पाती, हाथ भेजिए की के।
उन बिन बाहर काटिए कैसें,रज आपने जी के।
'चंद्रसखी' आवें मन मोहन, स्याम लगनियाँ जीके।

उनकी भूलना की फागें भी प्रचलित हैं। खड़ी फागें भी चंद्रसखी ने लिखी है:–

आये ना श्याम सखी द्वारे में,ठाड़ी रई केसर घोरें।
कुमकुम वीर अबीर धरें रई, लाल गुलाबी रज जारें।
तरसत रई उनें तकबे कौं, नेह भरी दोऊ दृग कोरें।
करती भेंट गरे लग–लग कें, जेई लालसा रई मोरें।
चंद्रसखी मोहन से कइयो,प्रीति लगाकें ना टोरें।।

महारानी रूपकुवंर:– ये चरखारी नरेश स्व. महाराज मलखान सिंह की पत्नी थीं। महाराज मलखान सिंह स्वयं एक अच्छे कवि थे। रानी साहिबा का वैधव्य जीवन बड़ी साधनाओं का जीवन रहा है। इनकी भजनमाला नाम की पुस्तक वि. 1965 में प्रकाशित हुई थी। उसी में उनके भजन प्रकाशित हुये हैं।

रसना राम कौ नाम नगीना,मन मुदंरी में दीना।
निराकार निर्वान से खोदो,ऐसी थान कहीं ना।
नेह दिवाल देहकर दीपक, कबहुँ न परत मलीना।
रूप कुंवर की मान सिखावन, तन,मन,धन सब दीना।।

पं. घनश्यामदास पांडये:–

अँखियाँ अब ना रईं,तरवारें ना पिस्तौल प्रहारें।
हरि–हरि कह हम जग नारिन कों, माता रूप निहारें।
नेह भरे जननी हरि नैनों,मोपै इमरत ढारें।
निरखत आप दृगन कों हम तौ, नजन पगन पै डारें।
कवि घनश्याम मोक्षदाता हरि मोरे जनम सुधारें।।

हीराबाई:–

बुंदेलीखंड के कोने–कोने में इनके गीत गाये जाते हैं।

" हमरौ संकट काट मुरारी, तुम्हरी है बलिहारी।
सुरपत कोप कियौ ब्रज, गोबर्धन गिरधारी।
ज्यों गज टेर सुनीं जदुनंदन, त्यौ हीरा की बारी।।

ब्रम्हानंद:–

इनका यह भजन लोक मानस में प्रचालित है।

दीनदयाल दया करकें, भवसागर सें कर पार मुझे।
नीर अपार न तीर दिसे मम धीर धरौं कैसें मन में।

मेरी नैया डुबाय रई मग में सरनागत जान कें तार मुझे।
छूट गया सब साथ मेरा कुछ हाथ में जोर रहा भी नहीं।
अब नाथ न देरी लगाओ जरा निज बाँह पसार उबार मुझे।

तेरा नाम जहाज बड़ा जग में सब वेद पुरान बतावत है।
ब्रह्मानंद जपै दिन रात सदा,प्रभु कीजिए पार किनार मुझे।।

लोक भजन हमारी संस्कृति हैं, साधना का आधार हैं। ईश्वर से लौ लगाने का साधन। उपासना की सीढ़ी। आराधना और समर्पण का भाव। ऐसा भाव जिसमें कबीर राम का कुत्ता बनने के लिये तैयार हैं:–

कबीर कूता राम कौ मुतियाँ मेरौ नांव।
गले राम की जेबड़ी जित खेंचो तित जांऊ।।

दास कबीर संसार रूपी चादर को बड़े जतन से ओढ़ते है और उसे मैली नहीं होने देना चाहते। "दास कबीर जतन से ओढ़ी, जयौं की त्यौं धर दीन्हीं चंदरिया।'

कबीर 'सुनो भई साधो' कहकर चेतावनी देते हैं। मन को प्रबोधते हैं। जीवन का यथार्थ– बोध कराते हैं। उनके भजन अलाव पर खंजरी बजाकर गाये जाते हैं। भजन का भाव बड़ा व्यापक हैं। जिसमें आत्मा,परमात्मा मय हो जाती हैं। मन ब्रहममय हो जाता हैं। कुंठ ईश्वर भक्ति में लीन हो जाते हैं। लोक की अंचल की अमूल्य नीधि हैं ये लोक–भजन।

डॉ. सीताकिशोर खरे
सेंवढ़ा

गोरी पानी भरिबे निकरीं

गोरी निकरी पानी भरिबे मुख पै घूँघट हल्कौ डार।
सिरके ऊपर धरें गगरिया,
ननदी संगै जात डगरिया,
चढ़त बैस औ नई उमरिया,
झमक–झमक पग धरत धरन पर पायल की झनकार।
गोरी निकरी पानी भरिबे मुख पै घूँघट हल्कौ डार।
हेरत हिरनी सी जा जावै,
ओंठन बीच तनक मुसक्यावै,
चुटला कम्मर तक लहरावै,
एक छोर आँचर को उड़ रऔ रूप दियौ करतार
गोरी निकरी पानी भरिबे मुख पै घूँघट हल्कौ डार।
नाक नीकी लैगे पुंगरिया
मुदरी नग से जड़ी उँगरिया,
चमक जात बिजरी सी मों पै बिदिया दयै लिलार।
गोरी निकरी पानी भरिबे मुख पै घूँघट हल्कौ डार।
चली डगर पै कमर मरोरत,
आँखन में इगरत सौ घोरत,
शोभा चंदा की मों मोरत,
मोहत 'मुकुल' गैल गैलारे कर मन कौ सिंगार।
गोरी निकरी पानी भरिबे मुख पै घूँघट हल्कौ डार।

रचयिता : कन्हैया लाल शास्त्री 'मुकुल''
खांदी ताल बेहट जिला–ललितपुर (उ.प्र.)

लोक संस्कृति की मूल चेतनाः-

आलेख डॉ दुर्गेश दीक्षित

लोक संस्कारों का परिष्कृत स्वरूप लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति आदिम मानव से लेकर ग्राम्य जीवन की सामूहिक सौंदर्य मूलक अभि क्रियाओं की सहजात अभिव्यक्ति है। डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने लिखा है। कि " आदिम मनुष्य ने जिस क्षण निजांनद को सामूहिक आनंद से संयुक्त करके अपने और प्रकृति के अभेद का व्यापक अनुभव स्वंय के सृजन मूलक कार्य व्यापारों में उदघाटित किया होगा, उस क्षण ही लोक संस्कृति की अवधारणा का सूत्रपात हुआ होगा।

लोक संस्कृति ने प्रायः अपने आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन को अमूर्त के माध्यम से व्यक्त किया हैं। सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वों और सूक्ष्म ऐन्द्रिक संवेदनों को अमूर्त रूप में प्रकट करने का तरीका लोक संस्कृति के पास एक जैसा ही हैं। अमूर्त को मूर्त की तरह अभिव्यक्त करने के लिये प्रायः लोक ने अपने आस पास की चीजों से ही अपना काम चलाया हैं, इसके लिये उसने प्रकृति-पदार्थ घरेलू सामग्री दैनन्दिन क्रियाऐं और कहीं-कहीं मात्र शब्द को ही अपनी अभिव्यक्ति का उपादान बनाया हैं। निश्चित ही लोक संस्कृति के पास मूर्त और अमूर्त दोनों विधानों के लिए एक कलात्मक दृष्टि हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं में उसकी रचनात्मकता की ऐहिक और पारलौकिक सिद्धियों का समन्वय हैं।लोक संस्कृति की मूल चेतना लोकगीतों, लोक कथाओं, लोकगाथाओं, लोकोक्तियों, लोकाचारों, लोक विश्वासों, लोक पर्वो और लोक कलाओं में ही परिलक्षित होती है। डॉ. नर्मदा गुप्त ने अपने ग्रंथ 'बुंदेली,संस्कृति और साहित्य में लिखा है। :-

लोक दर्शन लोक संस्कृति की आत्मा है जो उसे चेतना की संजीवनी देकर हमेशा जीवित रखती है। देह, मन और आत्मा के संबंधों की लोक दार्शनिकता रहस्यमयी होती है। जिसे प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। आल्हा, लोक महाकाव्य की कुछ पंत्तियां सुनियेः-

"मानुस देही जा दुरलम है, आहै समै न बारंबार
पात टूटकै ज्यों तरवर कौ, कमऊ लौट न लागै डार।।

शरीर और मृत्यु का यह लोक चिंतन तत्कालीन लोक की जागरूकता का प्रमाण है। लोक संस्कृति का सच्चा रूप स्वाभाविक चित्रण लोक साहित्य में प्राप्त होता है। ग्रामीण अथवा लोक कवि ने जिस समता अथवा विषमता का अनुभव किया है, उसका उसी रूप में चित्रण भी किया है। पारिवारिक जीवन के जो मर्म स्पर्शी दृश्य यहां उपलब्ध है। उसके दर्शन लोक साहित्य में ही होते है, जन जीवन को चित्रित करने वाले चतुर चितेरों ने वड़े संयम-नियम से अपनी सुंदर लेखनी का प्रयोग किया है।लोक गीतों और लोक कथाओं में समाज के विविध रूपों का चित्रण सफलता पूर्वक किया गया हैं। जहां आदर्श पतिव्रता नारियों का उल्लेख है। वहीं कर्कशा और कुल्टा नारियों के चित्र है। नारियां अपने पति व्रत और सतीत्व की रक्षा के लिये खड़ी-खड़ी जल जाती है। व्यभिचारी आतातायी उनके अंग को स्पर्श भी नहीं कर पाता। मथुरावली लोकगाथा की कुछ पक्तियां कथनीय हैं:-

"अंग जरें जैसें लाकड़ी,केश जरें जैसे घास,
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।
रोये चलें दाके वालमा,विहँस चले वाके वीर।
राखी बहना,पगड़ी की लाज
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।"

यह बुंदेली संस्कृति का गौरव हैं। जहां की नारियां सतीत्व की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग कर देती हैं। लाला हरदौल की भावी अपने हाथ से देवर को विष मिश्रित भोजन परोस कर अपने आदर्श चरित्र का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। लोक गीतों में वे सब उच्च आदर्शों के स्वर झंकृत हो रहे हैं:-

नजरिया के सामने तुम हरदम लाला रइयों,
जैसी लाला अबे निमाई, उसई सदा निबइयों,
जे मइया, मइया को मारें,उनपै गाज पर जइयो
नजरिया के सामने ....

जहां माता और पुत्री का पवित्र प्रेम प्रदर्शित है। वहीं सास- बहू, ननद-भाभी और देवर-भाभी के कटु और विषाक्त व्यवहारों का वर्णन हैं। भाई-बहिन, पति-पत्नि, माता-पुत्र, पिता-पुत्र आदि के पवित्र प्रेम की झाँकियां हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक कवि ने जन जीवन के उभय पक्षों को सुंदर और असुंदर ढंग को प्रस्तुत किया हैं। बुंदेली लोकगीतों और लोक कथाओं में इसके

उदाहरण भरे पड़ें है। लोक संस्कृति की मूल चेतना का दर्शन हमें 'गीताकार' की पक्तियों में दिखाई दे रहा हैं।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, माकश्चिद दुखमाग भवेत्।।

यह लोक मंगल की भावना लोक गीतों और लोक कथाओं में दिखाई देती हैं। हर लोक कथा के अंत में कहां जाता हैं। कि–

'वे राजा उर वे रानी भई,जैसे उनके दिन फिरे,
ऊसई सबके दिन फिरबै,
भगवान कोऊ के पाँव काँटों ना लगें।'

ऐ भावना लोक संस्कृति की मूल आत्मा हैं। आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान,वेशभूषा लोक विश्वास की झाँकी लोक गीतों और लोक कथाओं में प्रदर्शित होती है।पं. शिवसहाय चुतर्वेदी की बुंदेली कहनियों में सुंदरियों की साज–सजा और श्रंगार का चित्रण किया गया हैं। जिसमें लोक संस्कृति की झाँकी दिखाई दे रही हैं।"

बो कैंसी लगत ? बारन बारन मोती गुहैं,
सोरा श्रंगार करै। बारा आभूषण पैरें, बिछिया अनोंटा पैरें।

"वो सैंदुर सुरंग लगायें, मोंतिन सें माँग भरें, केसर कस्तूरी कौ लेप करें पान खायें, अतर लगाये, लोंगन लायची कौ बटुआं कमर में खोंसें। उर ऊकों बदन कैसों लगत ? होरी कैसी झार, नैंनू केसो लौंदा। पूनौ कैसो चंदा दिवारी कैसो दिया। लफ–लफ कैं दूनर हो जाय, गरें से पान की पीक दिखाय, कंकड़ मारे सैं लोहू कड आय। फूँक मारी तौ अकासै उड़ जाय,बीच में खैचें सैं गांठ पड़ जाय,पछारे सैं नागिन सी लिपट जाय,पलंग पै हिरा जाय तो बारा बरष ढूंढ़े ना मिलें।

ये सब नायिकाओं के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन हैं। जिन पर आज का शिक्षित समुदाय बहुत कम विश्वास करेगा। लोक संस्कृति में धर्म का सर्वोच्च स्वर सुनाई देता हैं। विविध देवी देवताओं की पूजा,अर्चना,व्रत, उपवास, धार्मिक अनुष्ठान धार्मिक ग्रंथों का वाचन समय–समय पर हुआ करता हैं। हर माह में किसी न किसी व्रत उपवास का विधान हैं। नवरात्रि के अवसर पर, भक्ति–भावना का वातावरण रहता हैं। देवी जी के गीतों से समस्त वातावरण गूँज उठता हैं। भक्ति भावना में डूबकर बुंदेली बालायें समवेत स्वर में 'कोकिल कंठों से गा उठती हैं:–

कैसे कें दरशन पाऊँरी, माई 'तोरी सकरी 'दुअरियाँ'
सकरी दुअरियाँ तोरीं ऊँची अटरियाँ ....
माई के दुआरे 'इक अंधा पुकारें।
देव नैंना घर जाँऊरी – माई तोरी सकरी दुआरियाँ।
माई कै दुआरे 'इक अंधा पुकारें।
देव नैंना घर जाँऊरी– माई तोरी सकरी दुअरियाँ।
माई के दुआरे इक लंगडा पुकारें ।
देव पांव घर जाऊँरी– माई तोरी सकरी दुअरियाँ।
माई के दुआरे 'इक कोढ़ी पुकारें।
देव काया घर जाऊँरी– माई तोरी सकरी दुअरियाँ।
माई के दुआरे ' इक बॉझन पुकारें।
देव लालन घरा घर जाऊँरी– माई तोरी सकरी दुअरियाँ।

कार्तिका का तो पूरा माह व्रत पूजा और उपवास का होता हैं। माहिलाऐं एक महीनें तक प्रातः स्नान करके गोपी भाव में भगवान कृष्ण की लीलाओं का गायन करती हुई जन–जन के मन में भक्ति भावना जाग्रत कर देती हैं। कार्तिक के गीतों से समस्त वातावरण ध्वनित हो जाता हैं।

" दईरा लैंकें आ जाऊँरी बड़े भोर।
ना मानों कुनरी घर राखों मुतियां जड़े अमोल।
ना मानों मटकी घर राखों लाख रतन कौ मोल।।

किंतु आज के इस यांत्रिक और प्रगतिशील युग में लोक संस्कृति की मूल चेतना सुसुप्त सी होने लगीं हैं। उसे पुनर्जागृत करने की आवश्यकता हैं ?

अन्यथा इस मूलवान निधि से हम हाथ धो बैठेगें हालांकि बुंदेलखंड की कुछ साहित्यिक और संस्कृतिक संस्थाऐं इस मूल्यवान निधि के संरक्षण करने में जुटी हैं। आदिवासी लोक कला परिषद में डॉ. कपिल तिवारी, अखिल भारतीय बुंदेलखंड साहित्य एवं संस्कृति परिषद भोपाल में श्री कैलाश मड़वैया, लोक साहित्य संस्थान सागर में डॉ. सरोज गुप्त, लोक साहित्य अकादमी छतरपुर में स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त बुंदेली विकास संस्थान बसारी (छतरपुर) में डॉ. बहादुर सिंह परमार, लोक साहित्य संगम उरई में डॉ. अयोध्या प्रसाद गुप्त "कुमुद" और डॉ. हरि मोहन पुरवार,बुंदेली साहित्य संस्थान झाँसी में डॉ. रामनारायण शर्मा बुंदेली पीठ सागर में डॉ. राजमति "दिवाकर" बुंदेली साहित्य और संस्कृति की अलख जागे रहें हैं। इन महान विभूतियों के सतत प्रयास से बुंदेली साहित्य और संस्कृति के संरक्षण की संभावना में वृद्धि हो रही हैं।

रामगढ़ की रानी वीरांगना अवंतिबाई

आलेख–श्री हीरासिंह ठाकुर

"देह में एक भी बूंद रक्त जब तक रहेगा इन फिरंगियों से लडूंगी। न चैन लूंगी न चैन लेने दूंगी।"

ऐसे पक्के इरादे वाली वीरांगना का नाम था, रानी अवंतिबाई।

रानी के इस दृढ़ निश्चय वाले प्रण को सुनकर, उनके कट्टर सहयोगियों ने कहा कि यदि हमें अस्त्र–शस्त्र के अभाव में पत्थरों एवं डंडों से भी लड़ना पड़ा, तो अंतिम सांस तक लड़ेंगे। रानी अल्प समय में ही इतनी जन प्रिय हो गई कि जनता उनके लिये सिर कटा देने को भी हमेशा तैयार रहती थीं। रानी ने उन सभी प्रमुख व्यक्तियों को जिनमें दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव था। एक कागज की पुड़िया भेजी जिसमें कांच की चूड़ियां एवं एक पत्र था। पत्र में लिखा था, कि देश और धर्म की रक्षा करो नही तो चूड़ियां पहन कर घर बैठ जाओं। इसका अच्छा असर पड़ा एवं रानी ने इस तरह एक अच्छी सेना का गठन किया। चूंकि रानी के इरादे नेक थे। एक मात्र उद्देश्य था, फिरंगियों को अपनी मातृभूमि से खदेड़ना।

यह विडम्बना ही हैं, कि वीरांगनाओं में मातृ भूमि की बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग करने वाली रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई, चांद बीबी, हजरत महल एवं जीनत महल को तो इतिहास में समुचित स्थान मिला, पर रानी अवंति बाई को इससे वंचित रखा गया। या यूं कहिये कि इतिहासकारों का इस ओर विशेष ध्यान नहीं गया। इस तरह इतिहासकारों द्वारा रामगढ़ की रानी वीरांगना अवंति को नजर अंदाज करना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को ही अधूरा एवं अनदेखा करना हैं। इनके शौर्य एवं बलिदान के प्रमाण अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों एवं सन् 1912 के मंडला जिले के गजेटियर में उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा ने भी 'रानी रामगढ़' नामक उपन्यास लिखा है।

रानी अवंतिबाई का जन्म सिवनी जिले के एक लोधी क्षत्रिय परिवार में ग्राम मनकेड़ी में हुआ था। इनके पिता एक जागीरदार थे, जिनका नाम राव जुझारसिंह था। इनका जन्म किस सन् में हुआ इस संबंध मेंकोई प्रामणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। इतना जरूर हैं कि कुछ लेखकों ने 1832 एवं कुछ ने 1838 माना हैं। रानी अवंतिबाई का विवाह रामगढ़ राज्य के राजा विक्रमजीत सिंह के साथ हुआ था। मनोरम पहाड़ियों में घिरा रामगढ़ राज्य मध्य प्रदेश के मंडला जिले में चार हजार वर्ग मी. तक फैला था। चारों ओर किले की प्राचीर थीं। एवं मध्य में एक भव्य महल स्थित था। मंडला जिला मुख्यालय से 100 कि.मी. की दूरी पर रामगढ़ खरमेर नदी के किनारे, पहाड़ी पर स्थित था। इस राज्य का विस्तार सोहागपुर, अमरकंटक एवं कबीर चबूतरा तक था, जो अंग्रेजों के समय और छोटा हो गया, पर रानी की देश के प्रति अपार श्रद्धा एवं देश प्रेम राज्य के आकार की तुलना में लाख गुना अधिक था। 1956 के प्रकाशित म.प्र में स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि रामगढ़ जिले की पहाड़ियों स्थित एक महत्वपूर्ण स्थान है। जहां गौड़ वंशीय शासकों के सहयोगी एक प्रसिद्ध लोधी राजपूत समंत कुछ सौ ग्रामों की अपनी छोटी सी जागीर पर शासन करता था। रामगढ़ का प्रथम राजा गाजीसिंह था। उसकी मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र लक्ष्मण सिंह ने 1850 तक शासन किया इसके बाद उनके पुत्र विक्रमजीत सिंह ने गद्दी सम्हाली, यही रानी अवंति बाई के पति थे।

जिस समय विक्रमजीत सिंह गद्दी पर बैठा उस समय देश में डलहौजी की राज्य हाड़प नीति चल रही थीं और इसी नीति के तहत देश के अनेक देशी राज्यों को अंग्रेज अपने राज्य में मिलाते गये। सन् 1857 में राजा विक्रमजीत सिंह की अस्वस्थता का लाभ उठाकर अंग्रेजों नें उन्हें पागल घोषित करके रामगढ़ के राज्य को कोट ऑफ वार्डस के अधीन कर दिया। इस अपमान को राजा नहीं सह सकें और रानी एवं अपने दो अवस्यक पुत्र अमान सिंह एवं शेर सिंह को छोड़कर परलोक सिधार गये।रानी अवंति बाई को फिरंगियों की इस चाल से काफी दुख हुआ। उन्होनें मातृ भूमि से फिरंगियों को खदेड़ने की बात मन में ठान ली। इतने में ही 1857 विद्रोह शुरू हो गया एवं मंडला के राजा शंकर शाह जो गढ़ा में रहते थे। कारिन्दा गिरधारी दास ने अंग्रेजों को यह भर दिया कि यह बगावत का साथ दे रहे हैं। अंग्रेजों ने राजा शंकर शाह को दोषी न होते हुये भी मृत्यु दंड दे दिया। साथ ही उनके पुत्र रघुनाथ शाह को दोषी न होते हुये भी मृत्यु दंड दे दिया। रानी ने अंग्रजों के खिलाफ खुला विद्रोह कर दिया। रानी ने खड़देवरा के ठाकुर उमरावसिंह को अपना सेना पति नियुक्त किया तथा अपने सैंन्यबल को बढ़ाया। जेल से छूटते

ही रघुनाथ शाह ने आसपास के जागीरदारों मालगुजारों एंव राजे–रजवाड़ों को अंग्रेजों के खिलाफ संगठित किया। साथ ही सभी की एक मतैन राय लेकर उन्होंने रानी रामगढ़ को पत्र लिखा कि आप अंग्रेजों के विरूद्ध संगठित समूह का नेतृत्व कीजिये। रानी तो पहले से ही अंग्रेजों के खिलाफ भरी बैठी थी। उन्होंने नेतृत्व करने की स्वीकृति दे दी एवं 1857 में विजयादशमी के दिन अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का श्री गणेश किया। रानी के सभी सैनिक मूंगिया रंग के वर्दी पहने हुये थे। तथा टोपीदार बंदूकों एवं तलवारों से सुसज्जित थे। रानी भी मूंगिया रंग की वर्दी पहने थी एवं सर पर साफा बंधा था रानी ने शाहपुरा के मालगुजार बल्देव तिवारी को अपना सूबेदार बनाया। उनके नेतृत्व मे 500 सिपाहियों को आदेश दिया कि छावनी छोड़कर तत्काल पाटन पर कब्जा किया जाये। बल्देव तिवारी ने तत्काल पाटन पहुंचकर अंग्रेज अफसर को कैद कर लिया साथ ही तहसील एवं थाने पर अधिकार कर लिया। इसके बाद रानी को विजय का संदेशा भेजते हुये, यह कहलवाया कि आपके नाम पर अंतिम क्षणों तक युद्ध जारी रहेगा। तब रानी ने उत्तर भेजा कि युद्ध मेरे नाम पर नहीं देश के नाम पर एवं राजा शंकर शाह के नाम पर मैं लडूंगी एवं आप सभी इसी पर लडें। यदि हम फिरंगियों को देश को निकालने में सफल हो गये तो अपनी पंचायतें यह तय करेंगी । कि सत्ता किसके नाम पर नाम पर चलायी जाये।

इसके पश्चात् जैसे ही रानी कूच करने के लिये अपने घोड़े पर सवार हुई। जयजय कार के नारों से सारा गगन गूंज उठा। रानी के नेतृत्व में सेना ने कूच किया। एक स्थान पर पड़ाव रखा गया। तथा भोजन आदि कि व्यवस्था दी गयी। तभी अनेक जगहों से संदेश प्राप्त होने लगे। पाटन में बावन नंबर की पल्टन के एक बड़े भाग ने हार स्वीकार कर ली शहपुरा के ठाकुर युद्ध के लिये तैयार हैं। नागपुर कामठी से अंग्रेजो की फौज आ रही हैं। बहादुर सिंह ने संदेशा भिजवाया कि अगर रानी मंडला पर अधिकर कर लें, तो इससे बड़ी सहूलियत होगी। रानी ने सोचा पहले घुघरी एवं बिछिया के थानों पर अधिकार कर लिया जावें, फिर मंडला पर धावा छोड़ना लाभकारी माना। रानी ने अपने पुत्रों को विश्वसनीय सैनिकों की देखरेख में बोलना लाभकारी होगा। रानी ने अपने पुत्रों को विश्वसनीय सैनिकों की देखरेख में करके तथा रामगढ़ की सुरक्षा के लिये अधिकांश सैनिक छोड़कर 300 सैनिकों सहित घुघरी पर आक्रमण कर दिया। घुघरी पर आधिपत्य जमाते हुये रानी ने इसके पश्चात् रामनगर बिछिया एवं नारायण गंज पर अधिकार जमा लिया। इस विजय का समाचार पहुंचते ही वाडिंगटन ने नागपूर कामठी से और फौज भेजने हेतु संदेशा भेजा। इसी बीच नरसिंहपुर, सागर, दमोह, एवं जबलपुर जिलों में अंग्रेजों के खिलाफ। क्रोधाग्नि भड़क उठी। यह समाचार सुनकर रानी अत्यंत खुश हुई। इसी बीच रानी को समाचार मिला कि अंग्रेजों ने सलीमनाबाद में कहर ढा दिया है। कुछ को बंदी बना लिया है। एवं कुछ को फांसी पर लटका दिया है। गांव जला दिये है। शेष को बेघरबार कर दिया है। यह सुनकर रानी बड़ी दुखी हुई।

इसके प्श्चात रानी ने मंडला को चारों ओर से घेर लिया। रानी के भय से वाडिगटन परिवार एवं सेना सहित मंडला छोड़कर जंगलों की ओर भागा। रानी चाहती तो उस समय ही मंडला को अपने आधिपत्य में ले लेती पर एक तपस्वीह ओझा के कहने पर रानी ने ऐसा नहीं किया। रानी ने वाडिगटन का पीछा किया तथा गौर नदी पार कर पहाड़ी पर घेरा डालते हुये, वाडिगटन पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं के मध्य जमकर युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के काफी सैनिक हताहत हुये। वाडिगटन का तोपखाना तितर बितर हो गया। रानी ने एक बार फिर वार किया। चूंकि वाडिगटन का सैनिक विद्युत गति से वाडिगटन के सामने आ गया, इसलिये इस वार से भी वाडिगटन को यह पूरा भरोसा हो गया कि रानी के हाथों वह निश्चित मारा जायेगा, इसलिये उसने शस्त्र त्यागकर रानी से क्षमा मागं ली। रानी ने उसे प्राणदान दे दिया, जबकि रानी के सभी सहयोगी मना कर रहे थे, कि आप इसे मत छोड़िये क्योंकि अंग्रेज एक धोखेबाज कौम हैं। इस तरह वाडिंगटन रणभूमि से भाग निकला एवं रानी का मंडला पर अधिकार हो गया।

रण भूमि से लौटते समय रानी के सिपाहियों को एक आठ–दस वर्ष का अंग्रेज बालक, रास्ते में पड़ा हुआ,सैनिक उस बालक को उठाकर रानी के पास ले गये। रानी ने बालक से पूछा तुम्हारे पिताजी का क्या नाम हैं ? उसने टूटी–फूटी हिंदी में कहा कि मेरे डैडी का नाम वाडिगटन साब हैं। बच्चे की आंखों पर लगातार रोने के कारण सूजन थीं। रानी की ममता जाग गई एवं एक मां की तरह बच्चे को बड़े स्नेह एवं ममता से दूध पिलाया। उसके बाद सैनिकों को आदेश दिया, कि इसे इसके पिता के पास छोड़ आओ। सैनिको ने आश्चर्यजनक ढंग से कहा कि अंग्रेज तो ऐसा व्यवहार हमारे साथ नहीं करते तो फिर हम क्यों करें ? रानी ने तपाक से उत्तर दिया कि हम अंग्रेज नहीं हैं। और बच्चा भी हमारे बच्चों जैसा ही है। तब सैनिको ने कहा कि अगर वाडिगटन ने हम लोगों को पकड़ लिया तो। बालक ने तपाक से उत्तर दिया कि ऐसा नही होगा। बालक को लेकर सैनिक चल दिये रास्ते में ही वाडिगटन से मुलाकात हे गई। जैसे ही उसने अपने बच्चे को देखा तुरंत ही उसे

गले से लगा लिया एवं सैनिकों से पूछा कि आप लोग कौन हैं ? सैनिकों ने कहा कि हम लोग रानी के सैनिक हैं एवं बच्चे के प्रति मातृतुल्य व्यवहार को विस्तार से बतलाया। तब वाडिगटन ने कहा कि रानी साब को मेरा सलाम कहना एवं यह भी कहना कि वह बगावत छोड़ दें, उन्हें रियासत वापिस दे दी जायेगी एवं माफ कर दिया जायगा। साथ में यह कहा कि नागपुर कामठी से एक बहुत बड़ी फौज तोपखाने सहित जबलपुर आ चुकी है। जिसके सामने रानी साब का टिक सकना संभव नहीं है। लौटकर सैनिकों ने रानी को वाडिगटन का संदेश सुनाया। तब रानी ने कहां कि हमें रियासत नहीं चाहिये, हमें तो अपनी मातृभूमि से इन फिरंगियों को हटाना है। इसके पश्चात रानी ने रामगढ़ में पदस्थ तहसीलदार को मौत के घाट उतार दिया। इस अंग्रेजों ने नागपुर कामठी से आयी सेना की मदद से बिछिया, रामनगर, घुघरी एवं नारायण गंज पर अधिकार कर लिया। साथ ही विजयराघोगढ़ पर अधिकार करते हुये सर यूप्रसाद सिंह को काले पानी की सजा दे दी गयी।

दिसम्बर 1857 में वाडिगटन ने रामगढ़ की ओर कूच किया। अंग्रेजों एवं रानी के सैनिकों के मध्य 3 माह तक लड़ाई जारी रही अंत में वाडिगटन निराश होकर लौटने ही वाला था कि रीवा राज्य की सेवा मदद के लिये आ पहुंची। वाडिगगटन के हौंसले बढ़ गये उसने पुनः घेरा डाला। किले में चूंकि रसद समाप्ति की ओर थी, इसलिये रानी ने किले के बाहर निकलकर किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर लड़ना उचित समझा।

रानी अपने सभी सैनिकों सहित रामगढ़ के जंगलों में निकल गयी। इसके पश्चात वाडिगटन ने रामगढ़ पर अधिकार कर लिया। साथ ही अल्प समय में ही महल एवं परकोटा जमीन में मिला दिये। रानी का पता लगाते हुये अंग्रेजी सेना शहपुरा की ओर बढ़ी। रामगढ़ के विनाश की खबर सुनते ही सोहागपुर ने हथियार डाल दिये। रानी मुश्किल से शहपुरा के विकटवर्ती जंगलों तक ही पहुंच सकी होगी कि इतने में ही अंग्रेजों ने शहपुरा पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजी कमांडर ने रानी के पास पुनः आत्मसमर्पण करने हेतु एक संदेशा भेजा। रानी ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि लड़ते- लड़ते मर भले ही जाऊ पर परदेशियों के भार से दबूंगी नहीं। रानी ने देवकरगढ़ के जंगल में मोर्चा बंदी की। दोनों पक्षों के बीच यह अंतिम मुठभेड़ प्रारंभ हो गयी। रानी बंदूक चला रही थी कभी बैठकर कभी लेटकर अंग्रेजों के कसते हुये घेरे को देखकर रानी ने अपने सेनापति उमरावसिंह से कहा कि हमारी रानी दुगावती ने यह प्रण किया था, कि जीते जी दुश्मन हमारे शरीर को छू ना सके इसे भूल मत जाना क्योंकि मैं उनकी ही अनुगामिनी हूं, रानी आगे बढ़कर लड़ना चाहती थी कि बायें हाथ में गोली लगी एवं बंदूक छूटकर नीचे गिर गयी। रानी ने दाहिना हाथ बढ़ाते हुये उमरावसिंह से तलवार मांगी। पर कुछ क्षणों का विलंब होते देख रानी ने अपनी अंगरक्षिका गिरधारी बाई की कमर से कटार खींच ली एवं अपने पेट में घोप ली। वाडिगटन ने तत्काल फौजी डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर ने रानी के पेट से जैसे ही कटार निकाली उसके कुछ क्षण बाद ही रानी को होश आ गया एवं उन्होंने आंखें खोलीं। वाडिगटन ने पूछा कि रानी साब आप यह तो बतलाइये कि आपके साथ कौन-कौन राजा है। रानी ने ऊंचे स्वर में कहा- ये सब एकदम बेकसूर हैं। इतना कहते ही रानी अवंति बाई 20 मार्च 1858 को मातृभूमि पर प्राण न्यौछावर करती हुई, रानी दुर्गावती के 300 वर्ष पुराने बलिदान की स्मृति को तरोताजा करती हुई स्वर्ग सिधार गयी।

इतिहास कार श्री सुंदर लाल ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ " भारत में अंग्रेजी राज्य मे लिखा है कि " निः संदेह रानी अवंतिबाई का व्यक्तिगत जीवन जितना पवित्र एवं निष्कलंक था, उनकी मृत्यु भी उतनी ही वीरोचित थी। मुट्ठी भर देशभक्त सैनिकों के साथ जिस अलौकिक वीरता और असाधारण युद्ध कौशल के साथ उन्होंने मृत्यु का वरण किया, वह इतिहास के विरले उदाहरणों में एक है।

इस वीरांगना की याद मे 20 मार्च 1988 को केन्द्रीय शासन के संचार विभाग ने एक डाक टिकिट भी जारी किया था। हर वर्ष इनका बलिदान दिवस 20 मार्च को प्रदेश एवं देश में स्वतंत्रता संग्रामियों के संगठन एवं जिस समाज में यह जन्मी वह लोधी क्षत्रिय समाज मनाते आ रहे हैं, जबकि आवश्यकता इस बात की हैं कि ऐसी वीरांगना को संकुचित दायरे से बाहर निकालना होगा। जिससे समस्त देशवासी इस शौर्य एवं कीर्ति की प्रतीक रानी अवंति बाई परिचित हो सकें, क्योंकि वीरांगना किसी जाति वर्ग या समाज की नहीं वह तो सारे देश की अमूल्य धरोहर हैं। एवं सभी के लिये वंदनीय हैं।

-हीरासिंह ठाकुर, माता मंदिर, भोपाल

श्री गोपाल भार्गव जी, मंत्री म.प्र. शासन को व्यजंनों का स्वाद चखाते श्री मानवेन्द्र सिंह जी हजारिया
साथ में स्वाद की अनुभूति की अभिव्यक्ति देते श्री पुष्पेन्द्र सिंह जी हजारी।

डॉ. एम.एम. पाण्डे एवं श्री जे.एम. श्रीवास्तव दीप प्रज्जवलित करते हुए साथ में
श्री पुष्पेन्द्र सिंह जी हजारी।
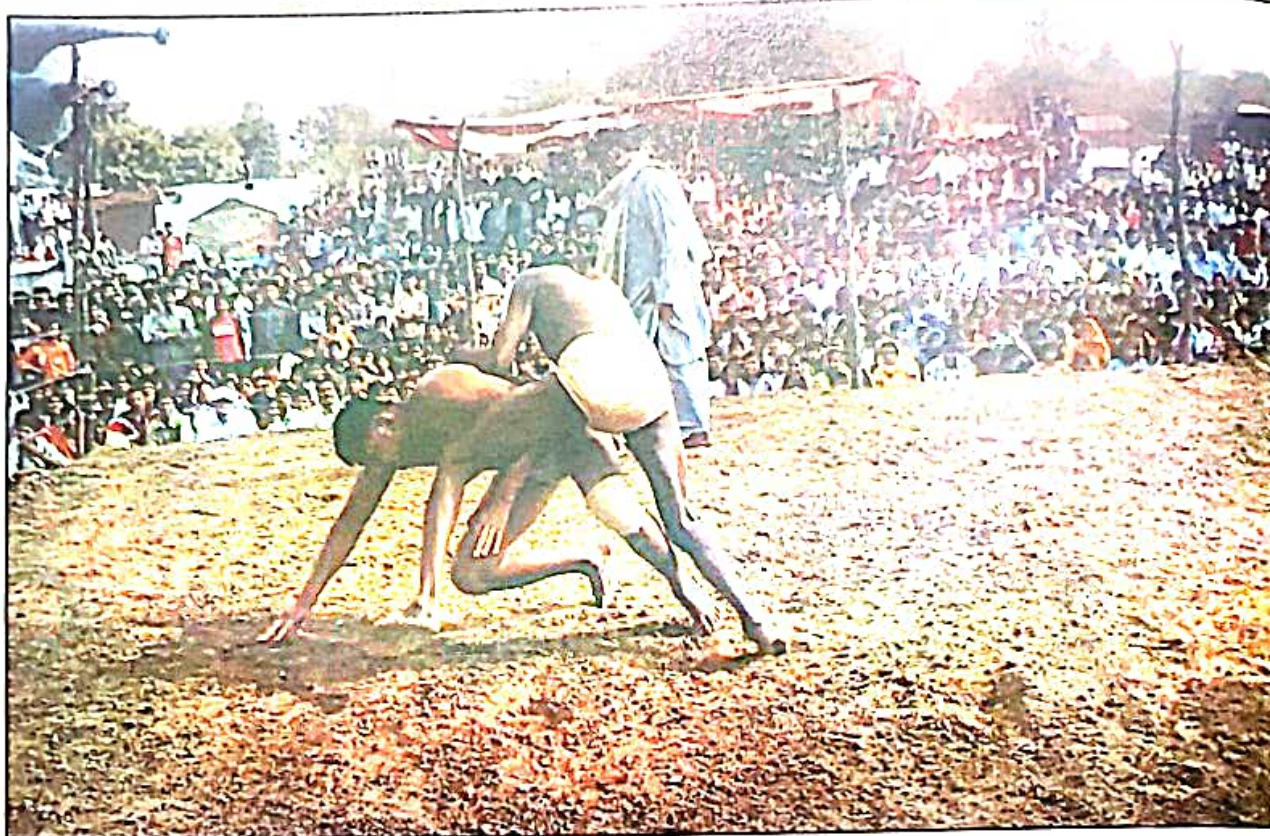
कुश्ती के दाँवपेंच

राई नृत्य की मनमोहक मुद्रा

श्री पुष्पेन्द्र सिंह जी हजारी, श्री अनिल कुमार त्रिपाठी को प्रशस्ति-पत्र भेंट करते हुए
साथ में नगर पालिका परिषद, हटा के अध्यक्ष श्री जीवन लाल तंतुवाय।

पुरस्कार वितरण करते हुए डॉ. एम.एम. पाण्डे साथ में श्री पुष्पेनन्द्र सिंह, श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव,
श्री राजकुमार दुबे एवं श्री अनिल त्रिपाठी।

अश्वनृत्य का एक दृश्य

बुन्देली मेला का आनंद लेता विशाल जन समुदाय का एक दृश्य

बुंदेली लोक नृत्य–"राई"

–डॉ. अनादि

बुंदेलखंड की धरा पर एक ओर इतिहास ने शौर्य एवं बलिदान की ओर संस्कृति के विभिन्न रंगों के इंद्रजाल बुने हैं। लोक जीवन में शिव और आदि शक्ति–'मैयां (देवी) के प्रति भक्तिगीतों का निनाद गूंज रहा है। इसके साथ ही सांस्कृतिक परंपरा की रंजन कारी कलाओं का वैभव, लोक संगीत की भावपूर्ण तन्मयता एवं नृत्य परिलक्षित होता है। विशेष रूप से नृत्य के माध्यम से लोक जीवन में परिव्याप्त हैं। बुंदेली नृत्य रूपों में राई नृत्य का स्थान, इसलिये महत्पपूर्ण है, क्योंकि इस एकल नृत्य के साथ लोक की समूह चेतना का उल्लास समग्र रूप से संबंधित है। अतः राई नृत्य को हम लोक उत्सव के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहेंगे। उत्सव जैसी सामाजिक अंतरंग उत्प्रेरणा के वशी भूत होकर राज्य शक्ति के केन्द्र से श्रम शक्ति की परिधि की ओर अग्रसर होने वाला यह ऐसा विजय पर्व हैं, जो लोकोत्सव राई नृत्य के रूप में प्रख्यात हैं।

संभवतः 1128 ईसवी के आसपास जब बुंदेलखंड राज्य हेमकरण बुंदेली ने ओरछा को स्वतंत्र बुंदेलखंड राज्य की राजधानी का वैभव प्रदान किया, उस समय से राज महलों के विशाल प्रागंण और बुंदेला सरदारों की हवेलियों और बारबरों में इस उत्सव का आयोजन प्रारंभ हुआ। राई की एकल नृत्यांगना के नृत्य कौशल के साथ समूह द्वारा गीत की एक ही टेक पर ढ़ोलक नगड़ियां मंजीरे जैसे वाद्यों की संगत अनिर्वचनीय आनंद और तन्मयता का बोध कराती हैं।

प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका शिवानी ने अपने संस्मरण में लिखा हैं उनके पिता जब टीकमगढ़ स्टेट के दीवान थे, उस समय शिवानी जी ने रनिवास की महिलाओं के साथ कई बार राई नृत्य नर्तकी की शालीन कला प्रदर्शन को देखा। बुंदेली वस्त्र विन्यास जिनमें घाघरा (लहँगा) चोली और घूँघट की ओठ में छिपाए हुए नर्तकी प्रागंण में भद्र पुरूषों के समक्ष नृत्य करती है। लोक परंपरा के अनुरूप अभिजात्य वर्ग के समक्ष बुंदेलखंड की महिला का चेहरा घूघँट से आवृत होना चाहिए। नारी के शील रक्षण का यह प्रयास उल्लेखनीय है। इसलियें शिवानी ने राई नृत्य को घूँघट नृत्य है। जो राजस्थान के झूमर नृत्य का नाम जैसा है।

संस्कृत में रई शब्द का प्रयोग मिलता है। जिसका शब्दार्थ 'मथानी' है। गीता और कवि रसखान के कवित्त में भी 'रई' शब्द का प्रयोग है। जिस प्रकार मथानी दही पात्र में केंद और चारों ओर वर्तुलाकार घूमती हुई दही को विगलित करके मक्खन निकाल लेती है। उसी प्रकार नृत्यांगना दर्शक एवं गायक समुदाय के मध्य वर्तुलाकार गति से नृत्य करते हुए रसानुभूति के आनंद के समरूप नवनीत को प्रगट कर देती है। यह तभी संभव है, जब इस आयोजन में समूहगान वाद्य कौशल एवं नृत्य संचरण का समायोजन कुशलता के साथ किया जावे। गायक समूह द्वारा संकेत रूप में गायी जाने वाली गीत की टेक भावना के उन्मेष में काव्य अलंकरण की सीमाओं का स्पर्श करने लग जातीं है। इस संदर्भ में एक संस्मरण प्रस्तुत है– 'मेरे घर के पीछे महुये का एक घना वृक्ष था, जहां गावों से आने वाली चमार जाति की बारातों का जनवासा दिया जाता था। वे लोग सारी रात राई गीत गाते रहते थे। रात्रि के उतरते पहर में जयशंकर 'प्रसाद' के आंसू की श्रृंगारिक स्मृति वेदना के भावों में डूबा हुआ था, उसी समय महुए के वृक्ष के नीचे लिखी पंक्तियां सुना डालीं–

तोरे घुंघटा की ओट,
नैन तरइया से झलकें।

सौंदर्य के आकाश में देदीप्यमान नक्षत्रों की तरह नायिका के चंचल नेत्रों का उजास रात्रि के झिलमिल घूंघट के बाहर आ जाना चाहता है। उपमा अलंकार की इस भावदशा के साथ मैनें निम्न पंक्तियों का अर्थ बोध प्राप्त करने का उपकम किया–

शशिमुख पर घूंघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूलि में,
तुम कौतूहल से आये।।

राई गीत की टेक अनन्य पुनरावृत्ति के शिखर पर समाप्त होती है और ढोल की थाप नर्तकी के जीवंत कौशल को आंदोलित कर जाती है। नगडिया की एक रसध्वनि का प्रभाव जल तरंगो के समान उमड़ती, घुमड़ती ढोलकी की अनवरत थापें, नर्तकी की ओर उत्कंठित मन के तटबंधों की ओर नृत्य प्रदर्शन को बाढ़ ग्रसित सरिता

की तरह उन्मत्त आवेग से बह जाना चाहती है। इसी के साथ राई नृत्य का एक अध्याय पूर्ण होता है तथा दूसरे उपक्रम के लिए गायक समूह का कोई प्रतिनिधि दूसरी टेक का आलाप प्रस्तुत करता है। टेक का यह आलाप छंद में है जिसमें हृदय की अंतःदशा की अभिव्यक्ति की जाती है जीवन के संयोग वियोग की मार्मिक, अनुभूतियों, समर्पित हृदय के भक्तिपूर्ण उद्गार अथवा ऐतिहासिक पात्रों के शौर्य एवं वलिदानों का प्रत्यास्मरण इन गीतों का केन्द्रीय विषय होता है। विरह गीतों में प्रकृति के सटीक उपमान भी प्रयुक्त होते हैं जैसे–

पुरहन कैसे नीर
काए राजा हो गए न्यारे–न्यारे

इस उदधरण में उत्प्रेक्षा अलंकार दृष्टव्य है किन्हीं अवसरों पर ईश्वर को साक्षी रूप मे मानकर प्रेम की प्रासंगिकता निरवार्थ समर्पण की भावना चरितार्थ होती है ऐसी भावप्रवण प्रस्तुतियां दोहा छंद मे होती हैं। जैसे–

प्रीत जू ऐसी कीजिए,
जैसे लोटा डोर
अपनो गरो फसाए कें
पानी लावें बोर
सबद तोरे मुरली वारे

इस साक्षी रूप में प्रस्तुत टेक को ही बार–बार गाया जाता है।

बुंदेलखंड के लोकजीवन में स्थापित वीरपूजा धार्मिक विश्वास भक्ति भावना हृदय की प्रेमाश्रय, श्रृंगारिक अंतर दशाएं राई गीत के सर्वग्रहीत पक्ष है। राधा और कृष्ण की आध्यात्मिक प्रणय लीला के संबंधो का उल्लेख भी राई गीतों में प्राप्त होता है। राधा उत्कंठिता नायिका है जो कृष्ण मिलन की आकांक्षा से व्याकुल है "बांसुरी की टेर मेरे हृदय की प्रेमवेदना को उद्दीप्त कर देती है" सरल भाषाई अभिव्यक्ति में अर्थ–गांभीर्य का प्रस्तुत चमत्कार राई–उत्सव के गीतों की निजी विशेषता है।

मैं तो आऊतई हती
काय खां बजा दई बैरन बांसरी

"बैरन बांसरी" के अर्थ गांभीर्य के महासागर में रागानुराग भक्ति के अगणित पैमाने डूब जाते हैं, इसी संदर्भ में बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के कवि 'विप्र' की पचास वर्ष पूर्व कही गई कुछ पंक्तियां मुझे याद आ गई इसमें तो कृष्ण की बांसरी के असतित्व पर ही संकट मंडराने लगा है।

जड़ से कहाओ वीर बांस।
उपजो ना बांस
बने न बॅसरी
बजे न बंसरी
न होयें विहाल
ब्रज की लावरी
गोपरी

लोक उत्सव के रूप में राई नृत्य के प्रदर्शन में गीत, वाद्य और नृत्य बुंदेलखंड सुदूर ग्रामीण अंचलों का लोकमन अवगाहन करना चाहता है। जाति, धर्म, वर्ग एवं लिंग की भेदमूलक दृष्टि का कोई महत्व नहीं है। राई नृत्य बुंदेलखंड की कला समष्टि का उत्कृष्ट रूप है। इसमें केंद्रक शक्ति के रूप में बेड़िया जाति की स्त्री होती है। बेड़िया नट जाति 'अकवाम जरायम पेशा' नामक पुस्तक में जो पुलिस अभिलेखागार में उपलब्ध होती है, अपराधजीवी मानी जाती है। अतः इनके कला लगाव को कई लोग उपेक्षा से देखते हैं। किन्तु देह व्यापार की व्यवसायिक मनोवृत्ति से इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक जीवन में दिखाई नहीं देता। बेड़िया जाति के लोग सामान्य कृषक परिवारों की तरह गांवो में अपने परिवारों का संरक्षण करते हैं। महिलायें भी अवसर आमंत्रण पर नृत्य करने आतीं–जातीं रहती हैं किन्तु कृषि उद्योग में परिवार के साथ अपना गृहस्थ जीवन का उत्तरदायित्व भी निबाहती हैं।

राई नृत्य के मौलिक स्वरूप में दूरदर्शन सिनेमा और शहरीकरण की प्रवृत्ति से परिवर्तन, परिलक्षित होता है। आइटम नृत्य की शैली में नृत्य को देखने की घृणित कोशिश की जा रही है। परम्परागत बुंदेली वेश भूषा के स्थान पर साड़ी पहनकर नर्तकियां नृत्य करती हैं तथा फिल्मी स्टाइल में अंग प्रदर्शन का भी प्रयास करतीं हैं, यह अवांछनीय परिवर्तन बुंदेलखंड की विजय पर्व से संबंधित राई नृत्य की ऐतिहासिक अस्मिता पर प्रहार के रूप में देखा जाना चाहिये। बुंदेलखंड की लोक संस्कृति की थोड़ी सी भी पहचान है तो हमें इस क्षेत्र के सामाजिक गौरव की कला वैभव की ऐतिहासिक आदर्शों की रक्षा करना चाहिये। राई नृत्य एक सांस्कृतिक उत्सव के रूप में आयोजित किया जाना चाहिये जिसमें कला वैभव की परम्परा के अनुरूप संरक्षित किया जा सके तभी यह कला का उत्कृष्ट प्रतिमान जन मन का कण्ठहार बन सकेगा।

शोध लेख-

बुन्देलखण्ड की पत्र-पत्रिकाओं का साहित्यिक अवदान

(संदर्भ-स्वाधीनता आन्दोलन)

बुन्देलखण्ड में स्वाधीनता के दौरान विभिन्न क्षेत्रों से प्रकाशित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने एक ओर सामाजिक जीवन को सुधार, परिष्कार और चेतना की राह दिखाई एवं संस्कृति का ज्ञान कराया, वहीं दूसरी ओर विभिन्न शिल्पगत प्रयोग करके पत्रकारिता के विकास की राह आसान की। यह गौरतलब है कि बुन्देलखण्ड की इन पत्र-पत्रिकाओं ने सामान्य जन में प्रचलित बोलचाल की भाषा को परिष्कृत जनभाषा का रूप प्रदान किया। घटना बाहुल्य स्वाधीनता आन्दोलन के परिपेक्ष्य में नवीन शब्दों का निर्माण एवं प्रयोग, बोलचाल के शब्दों का बेधड़क प्रयोग तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की भाषा की अनूठी विशेषताएँ हैं। दरअसल भाषा का सवाल प्रथमतः और अंततः अस्मिता का सवाल होता है, उससे किसी भी देश की पहचान जुड़ी होती है। भाषा के सवाल पर आचार्य शिवपूजन सहाय की स्पष्ट मान्यता है कि ''प्रचार के नाम पर संस्कार का संसार असह अनाचार है, जान पड़ता है। यह भाषा संस्कार के बदले भाषा संहार का युग है। पत्रकारों का ना इधर ध्यान है, ना इसमें अनुराग ही।'' इसी चिंता को आगे वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं - ''दोषी वास्तव में हम संपादक ही हैं जो अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भाषा के पवित्र क्षेत्र में भ्रष्टता फैलाते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान भाषा प्रीति और भाषा संस्कार चिंता के केन्द्र में थे। हिन्दी पत्रकारिता में भाषा की अशुद्धता अक्षम्य अपराध था।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन से संपृक्त हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से इस बात की पुष्टि होती है कि उनमें हिन्दी भाषा के प्रति कैसा ममत्व, दायित्व और टीस थी। स्वतंत्र भारत के इस दौर में यह बात अचंभित करने वाली हो सकती है, क्योंकि भारत के आधुनिक समाज ने जिस अंग्रेजी मोह की पट्टी बांध रखी है, उसे देश का भविष्य और उसकी समृद्धि अंग्रेजी की राह चल कर ही दिखाई देती है। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यह प्रश्न लगातार संपादकों तथा पत्रकारों के जेहन में रहा है कि क्या अंग्रेजी को नकारने से देश में एकता, वैज्ञानिक विकास और आर्थिक समृद्धि संभव नहीं है? तत्कालीन संपादकों एवं पत्रकारों की निश्चित धारणा थी कि देश की उन्नति सिर्फ हिन्दी भाषा में ही संभव है। स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता निभा रहे पत्रकारों को अपनी शब्द शक्ति और उसकी कलात्मकता का पूरा भान था। वे सभी पत्रकार होने के साथ क्रांतिकारी और साहित्कार भी थे, उनमें अद्‌भुत भाषा सामर्थ्य था। आधुनिक साहित्यिक विधाओं के पोषण एवं पल्लवन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। बुन्देलखण्ड की पत्र-पत्रिकाओं में अटपटी सी लगने वाली भाषा सशक्त, जीवंत शिल्प और साहित्यिक चेतना से लैस है। तत्कालीन समय सबसे सचेत था, पत्र-पत्रिकाओं की इस भाषा के सम्वन्ध में धर्मवीर भारती ने लिखा है कि ''भारत की धरती के अभागे लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई देशी भाषा के शब्दों के सहारे लड़ी। माध्यम बहुत सीमित थे, लेकिन शब्द की गरिमा जाग्रत थी, इसीलिए जनसंपर्क अद्वितीय था। हिन्दी शब्द प्राणवान था, वह अर्थ देने में समर्थ था, बस इतना मालूम था कि इस शब्द का अर्थ है- क्रान्ति, स्वतंत्रता, प्राणदान''

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया, जिसे सामान्य पाठक पढ़कर उसका सही अर्थ निकाल सके। उन्होने युगीन जनजागरण को ध्यान में रखते हुए मानक हिन्दी की जगह ऐसी भाषा का उपयोग किया, जिसमें सभी भाषाओं के आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया। अच्छे लोगों का काम है कि बाहरी भाषाओं के शब्दों को अपना सा कर डालना, जिससे भाषा दिन-प्रतिदिन अमीर होती जाए। पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से यह तथ्य सामने आया है कि भाषा की सरलता को बनाये रखने के लिये दीर्घ वाक्यों की जगह छोटे और संक्षिप्त वाक्यों के माध्यम से अपनी बात रखी गयी है। इन पत्र-पत्रिकाओं का व्याकरण भी सरल और ग्राह्य है। प्रायः अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी भाषा शैली अपनाने पर जोर दिया है जो पाठक को बांधती है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों में स्वभाषा उन्नति का प्रखर बोध था, उन्होने भाषा के सवाल को समाज से जोड़ा और गंभीरता से उसका पालन किया।

बुन्देलखण्ड की पत्र-पत्रिकाओं ने विषय को सही ढंग से प्रस्तुत करने के साथ ही भाषा की शुद्धता और सरलता पर विशेष

ध्यान दिया। पत्र-पत्रिकाओं की भाषा व्यवहारिक होने के साथ साहित्यिक भी होती थी। संपादकीय सूझबूझ उसका प्रमुख गुण था। संपादक अपने गुण को समझता था उसे इस बात का बोध था कि सार्थक शब्दों का प्रयोग भाषा की मारक क्षमता को बढ़ाता है। भाषा के विकास के लिये नये शब्दों का आगमन आवश्यक है, इससे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की भाषा में रोचकता व सरलता के साथ ज्ञान की वृद्धि और भाषा का विकास होता है।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादक अध्ययनशील और विवेकशील थे। तत्कालीन अधिकांश हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में गद्य एवं पद्य से संबंधित उत्कृष्ट रचनाएं प्रकाशित होती थीं। इन पत्र-पत्रिकाओं ने ही निबन्ध एवं कविता की भाषा-शैली को परिमार्जित किया। फलस्वरूप अनेक प्रकार की निबन्ध शैलियों का विकास हुआ और कविता का परिमार्जित रूप सामने आया। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में निबन्ध के माध्यम से तत्कालीन विविध उपलब्धियों के निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये, वे मानवीय चिंत से ओतप्रोत हैं। अधिकांश पत्रों में वैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक लेख, संस्मरणात्मक यात्रा वृतांत, जीवन, विविध सामाजिक वाद, सामाजिक समस्याएं और उनके निराकरण, स्मृति दर्शन, नारी जीवन, भूगोल, मनोविज्ञान, विविध प्रकार के अविष्कार, गृह नक्षत्र आदि ऐसा कोई विषय नहीं था, जिस पर लेख प्रकाशित न हुये हों। धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विषयों में साम्प्रदायिकता हिन्दुत्व बनाम आर्यसमाज का विवाद, भाग्यवाद, रहस्यवाद, अध्यातमवाद, पुनर्जन्मवाद, परलोकवाद, विकासवाद, अस्तितत्ववाद आदि विषयों पर समय-समय पर लेख प्रकाशित हुये। संपादकीय टिप्पणियों के विषय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समस्याओं से संबद्ध होते थे।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित अनियतकालीन हस्तलिखित पत्र 'बुन्देलखण्ड केसरी' के संपादकीय लेखकों ने हिन्दी भाषी जनता को संस्कृत साहित्य से परिचित कराने के लिये कुछ लेख प्रकाशित किये। इन लेखों से हिन्दी भाषी जनता का परिचय कराने का मुख्य ध्येय भारत की प्राचीन साहित्यिक व सांस्कृतिक विरासत से उनका परिचय कराना तो है, साथ ही उनकी वर्तमान काल में सार्थकता को रेखांकित करना भी है। साहित्य के स्तर पर यह दौर सीधी, सरल और साहित्यिक दृष्टि से साधारण किन्तु सामाजिक जागरण और सांस्कृतिक उत्थान की आकांक्षा से परिपूर्ण काव्य सृजन का काल था। 'बुन्देलखण्ड केसरी' में पौराणिक, आख्यानाश्रित और प्रत्यक्ष राजनीतिक काव्य रचनाओं की जगह राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों को चित्रित करने वाली छोटी-छोटी कवितायें प्रकाश में आईं।

सता ले हम गरीबों को अरे बदकार थोड़े दिन।
कहा ले हम गरीबों से, अजी सरकार थोड़े दिन॥
नशा सारी हकुमत का उत्तर जाएगा जल्दी से।
अगर भरते रहे ऐसे ही कारागार थोड़े दिन।

इस राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास आगे चलकर अधिक सांस्कृतिक संपन्नता के साथ हुआ। जातीय स्वाभिमान, आत्मगौरव और विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने के लिये भारतीय जनता के मन में उत्कृष्ट लालसा और आकांक्षा जगाने के जितने भी साहित्यिक उपकरण थे, उनका उपयोग इस पत्र के संपादकों ने किया।

टीकमगढ़ के श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद द्वारा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के कुशल संपादन में प्रकाशित हिन्दी पाक्षिक पत्र 'मधुकर' की भाषा पर्याप्त साहित्यिक और परिमार्जित है। इस पत्र ने साहित्य और संस्कृति के संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान दिया। उसकी भाषा का एक नमूना इस प्रकार है - 'यद्यपि मधुकर' का क्षेत्र जानबूझकर परिमित रखा गया है, क्योंकि परिमित क्षेत्र में ठोस काम करने की अधिक सुविधा तथा संभावना है तथापि इसका दृष्टिकोण व्यापक होगा। 'मधुकर' देश विदेश के सांस्कृतिक उपवनों से जीवनप्रद रस ग्रहण करके जनता के सम्मुख रखेगा। उसका किसी सम्प्रदाय या वाद विशेष से सम्बन्ध न होगा और क्षुद्र प्रांतीयता, विनाशकारी साम्प्रदायिकता तथा जातीय विद्वेश का वह घोर विरोधी होगा। 'मधुकर' की यह भाषा स्पष्ट करती है कि बुन्देलखण्ड की जनता साहित्यिक और संस्कृतिक चेतना से सम्पन्न थी। 'मधुकर' में महत्वपूर्ण कवियों की कवितायें भी प्रकाशित होती थीं, जिसके विषय राष्ट्रीय होते थे, उनमें स्वाधीनता आन्दोलन में भागीदारी का आवाहन होता था। सोहनलाल द्विवेदी की 'हमको ऐसे युवक चाहिये' शीर्षक कविता जो 'मधुकर' में छपी थी, की अंतिम पंक्तियां तत्कालीन काव्य बोध को दर्शाती हैं -

स्वतंत्रता की रटन अधर में, आजादी जिनका आराध्य
सिर को सुमन समझ कर जो, अर्पन कर सकते माँ प
हमको ऐसे युवक चाहिये, सकें देश का जो संकट ह

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों ने विदेशी भाषाओं के शब्द ग्रहण से कोई परहेज नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय खबरों को प्रकाशित करने के क्रम में उन्होने अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का प्रयो

भी किया है। सागर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक प्रकाश' में प्रकाशित 'अखबार' की कापियां जब्त कर लीं। शीर्षक खबर की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं - लंदन जून 23, लंदन के डेली हेराल्ड नाम के अखबार के दफ्तर पर सिटी पुलिस ने चढ़ाई की, क्योंकि इस अखबार वालों ने पानी के भीतर चलने वाली जहाज सबमेराइन नंबर 11 की तस्वीर खिंचवा कर अपने यहां रखी थी। यह जहाज गुप्त रूप से 15 जून को प्राइवेटली केपम बंदरगाह से छोड़ा गया था। पुलिस वाले फोटो और फोटो से निकले हुए अखबार की कापियां जब्त कर ले गए। प्रस्तुत वक्तव्य में आये तस्वीर, फोटो, प्राइवेटली, सबमेराइन आदि शब्द भाषा की निःसंकोच प्रकृति को दर्शाते हैं।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का विशेष ध्यान विशुद्ध हिन्दी भाषा के प्रति न होकर भाषाओं के लोकप्रिय देशज शब्दों की ओर था, जिससे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में बढ़ोत्तरी होती है, इसका एक उदाहरण देख सकते हैं - ''पराधीनता राष्ट्र के अपमान का चिन्ह है, जो इस अपमान को महसूस करता है, वह जीवित है, जिससे मानापमान के पहचानने की शक्ति नहीं है या होती वह मुर्दे के समान है। यह बातें बार-बार दोहराई जा चुकी हैं। नाना प्रकार की टीका टिप्पणियों से तरह-तरह की आलोचनाओं और प्रत्यालोचनाओं से उनका उज्जवल और कलुषित चित्र खींचा जा चुका है। मगर सदियों से अपने कंधों पर पराधीनता का जुआ रखे हुये भारत इसकी परवाह नहीं करता।'' भाषा की विशिष्ट भूमिका से परिचित इन पत्र-पत्रिकाओं ने भाषा के स्वरूप का नियमन किया। प्रयुक्त भाषा की साधुता और शुद्धता दोनों का ख्याल कर उसे परिनिष्ठत रूप प्रदान किया। वस्तुतः उनकी चिंता का मुख्य विषय भी यही था। हिन्दी भाषा की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं को यह बोध था कि भाषा संस्कार उनका मुख्य ध्येय होता है।

बुन्देलखण्ड की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अग्र लेख व टिप्पणियों के शीर्षक प्रभावकारी होते थे। यद्यपि इन दोनों की शैली पृथक होती थी। उनके अग्रलेखों में भावात्मक सौन्दर्य था, किन्तु टिप्पणियों में यथार्थपरकता होती थी। छोटे समाचार व्यंग्य की धार लिये होते थे। मथुरा प्रसाद मिश्र के संपादन में झांसी से निकलने वाले समाचार पत्र 'प्रजामित्र' की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है कि 'विवेकशील व्यक्तियों के हृदय में उस दुपल्ली पेपर की क्या वकत हो सकती है जिसकी इनीगिनीं प्रतियां ही प्रकाशित होती हैं और जो प्रकाशित होते ही यह घोषित कर देता हो कि 'कर्मधर्म' दैनिक रूप में प्रकाशित हुआ करेगा। इसके टाइटल पर लिखा रहता है साप्ताहिक पर निकलता है जब कभी। जहाँ फांके कसी होना शुरु हुई, वहां लोगों ने ये पेशा ही बना लिया है कि अखबार निकालो। तत्कालीन एक अन्य समाचार पत्र 'हिन्द राजस्थान' जिसके संपादक बेनी प्रसाद श्रीवास्तव थे, ने भाषागत् व्यंग्यात्मकता का अनूठा उदाहरण पेश किया है। अपने संपादकीय खान पार्टी के गुर्गो को मुँह तोड़ उत्तर शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है ''हिन्द राजस्थान में''ग्वालियर की खान पार्टी के गुर्गो को मुँह तोड़ उत्तर शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है ''हिन्द राजस्थान में ग्वालियर की खान पार्टी के कारनामें जब से प्रकाशित होना आरम्भ हुये हैं, तब से खान पार्टी के कैम्प में खलबली मच गई है। झांसी के सहयोगी 'समय' ने तारीख 7 अगस्त में मेजर साहब और खान पार्टी के भाटों और भाड़ों की तरह खूब तारीफ के गीत गाये हैं। इन भाटों और भाड़ों की बातों का हम कुछ भी जवाब ना देते पर 'समय' और 'प्रिंसलीइण्डिया' ने लोगों को भ्रम में डालकर मेजर साहब और खान पार्टी को दूध का धुला साबित करने के चेष्टा की है। यह चापलूस अखबार मेजर साहब के लिये तो हक की दुहाई देते हैं, पर साठे साहब के लिये हक की बात क्यों भूल जाते हैं। उपर्युक्त टिप्पणी से ये प्रमाणित होता है कि अंग्रेजी शासन और सामंतों की तरफदारी करने वाले अखबारों की भी खबर ली जाती थी।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में कदाचित ही ऐसा पत्र मिलेगा, जिसने भाषा की श्रीवृद्धि में साथ न दिया हो। समस्त पत्र-पत्रिकाओं ने अपने तरीके से भाषा को विकसित किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का प्रधान लक्ष्य भले ही स्वतंत्रता की प्राप्ति रहा हो, किन्तु उन्होंने भाषा परिष्कार का कार्य अनवरत जारी रखा। ''यह कहना अनुचित ना होगा कि गद्य के निर्माण का अधिकांश श्रेय हिन्दी पत्रकारों को है, जिन्होंने पत्रों के माध्यम से हिन्दी भाषा को एक व्यवस्था, समृद्ध और परिनिष्ठत रूप दिया।'' इन पत्र-पत्रिकाओं ने अनेक लेख एवं प्रेरक सामग्री होती थी जो मनुष्य की साहित्यिक अभिरूचि को जाग्रत करती थी, विशेषकर साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों ने उन लेखकों को पूरा अवसर दिया, जो किसी कारणवश स्वतंत्र रूप से अपनी रचनायें प्रकाशित नहीं कर पाते थे। टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'मधुकर' ने बुन्देलखण्ड के जनमानह को परिवर्तित किया, उन्हें किसी न किसी रूप में साहित्य से जोड़े रखा, साथ ही साहित्यिक अभिरूचि का विकास कर साहित्यि सृजन और पठन-पाठन के लिये प्रेरित किया। 'मधुकर' ने अपने प्रथम अंक में अपना उद्देश्य घोषित करते हुए लिखा है कि 'मधुकर' का यह दृढ़ विश्वास है कि प्राचीन काल की भांति भविष्य में भी इस भूमि खण्ड ओरछा और बुन्देलखण्ड की

साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भेंट गौरवपूर्ण होगी।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित होने वाली अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनमें सपाट एवं सरल भाषा का उपयोग किया जाता था। सम्प्रेषण उसका सर्वोत्कृष्ट गुण है। भाषा सहज होने की वजह से पूर्णतः ग्राह्य है। सहजता में ही उसकी रचनात्मकता है। विचार की पुष्टि के लिये भाषा की तथ्यात्मकता पर जोर दिया गया है। लोक भाषाओं और अंचल विशेष के शब्दों का प्रयोग भी सावधानी पूर्वक किया गया है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की स्थिति का अंदाजा उनकी लोकप्रियता और आमजनता में उनके प्रभाव को देखकर लगाया जा सकता है। तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने इनकी लोकप्रियता को देखकर जेल, जब्ती और जुर्माना की कार्यवाही की। स्वाधीनता आन्दोलन के समय पत्र-पत्रिकाओं के संपादन एवं पत्रकारों ने अपनी बात को लोगों तक पहुँचाने के लिये उन्हीं की भाषा और साहित्य विधाओं को आधार बनाया। विदेशियों द्वारा अपने हितसंवर्द्धन के लिये लाये गये मुद्रण और प्रेस का उपयोग भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये रामबाण साबित हुआ। बुन्देलखण्ड में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही मुद्रणालयों की स्थापना का कार्य शीघ्रता के साथ हुआ, जिसने बहुत जल्दी बुन्देलखण्ड के शहर और कस्बों में अपने पैर फैलाये। आरंभिक अवस्था में सागर, झांसी, टीकमगढ़, उरई, ललितपुर, बांदा आदि शहरों में इनकी स्थापना का कार्य हुआ। तदुपरांत बुन्देलखण्ड के लगभग प्रत्येक कस्बे में प्रेस स्थापित हुये। इसके अलावा दूरदराज के क्षेत्रों में जहां अंग्रेज सरकार की शक्ति और आर्थिक कठिनाईयों के चलते प्रेस की स्थापना नहीं हो पाई, वहां स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने हस्तलिखित साइक्लोस्टाइल पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। विचारोत्तेजक 'बुन्देलखण्ड केसरी' इसी तरह का हस्तलिखित पत्र था, जिसने सन् 1935 तक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को जाग्रत और प्रोत्साहित किया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की स्थिति संतोषजनक नहीं थी, उसका मुख्य कारण प्रेस का विलंब से आना और राजनीतिक चेतना में पत्र-पत्रिकाओं से भूमिका में अनभिग होना था, इसके बावजूद कलकत्ता, गोरखपुर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और आगरा से प्रकाशित होने वाले अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों की पहुँच बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में थी, जिनसे प्रकाशित होकर इस क्षेत्र के जागरूक पत्रकारों ने प्रेस की स्थापना हेतु सार्थक प्रयास किये। पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार-प्रसार में अंग्रेज शासन के प्रेस सम्बन्धी नियम मुख्य बाधा थे। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'प्रकाश' की सूचना गौरतलब है, उसने लिखा है - "इस वक्त प्रकाश के ऊपर अनिवार्य कठिनाईयों के आने व उस पर मानहानि का मुकदमा चलने से पत्र की व्यवस्था में अड़चन हो रही है, लिहाजा मानहानि का मुकदमा निपटाने और उचित व्यवस्था होने तक कुछ समय के लिये पत्र का प्रकाशन स्थगित किया जाता है। उचित व्यवस्था हो जाने पर पाठकगणों को पुनः सूचना दी जावेगी। कुछ दिनों के लिये 'प्रकाश' आपकी सेवा से वंचित रहेगा, उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं। 'बुन्देलखण्ड केसरी' पूर्णतः हस्तलिखित एवं साइक्लोस्टाइल पत्र था, इसका पूरा स्वरूप भूमिगत था। खण्डहरों में बैठकर लेख लिखना और प्राचीन मंदिरों में छिपकर इसकी प्रतियां निकालनी पड़ती थीं। रातों-रात संपूर्ण क्षेत्र में इसका वितरण एक साहस भरा कार्य था। इसके प्रसार की स्थिति के बारे में यह कतन उल्लेखनीय है- "जराखर निवासी सुखलाल भाई तथा रामदयाल कोरी 'बुन्देलखण्ड केसरी' की प्रतियां समूचे क्षेत्र में वितरित करते थे। ये दोनों बहादुर सैनिक एक दिन में पचास मील तक चलते थे। पूरे क्षेत्र का चक्कर लगाकर यथास्थान पहुंचते थे। इन दोनों युवा प्रसार योद्धाओं को कोई पहचानता नहीं था। ये गुप्त मार्गों से सब स्थानों पर 'बुन्देलखण्ड केसरी' की प्रतियां पहुंचाते थे। जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक एवं तहसीलदार जैसे अन्य सरकारी कार्यालयों में भी यह साप्ताहिक पत्र पहुँचता था। इसी के आगे उल्लेख मिलता है कि 'बुन्देलखण्ड केसरी' के निर्भीक लेख, कवितायें, कार्टून एवं आंग्ल विरोधी टिप्पणियों से भरे इस पत्र के प्रति जनता में रूचि बढ़ी और इस पत्र की हजारों प्रतियां प्रकाशित होने लगीं। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ज्यों-ज्यों राजनीतिक चेतना का विकास हुआ, उसी के अनुरूप हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रचार-प्रसार की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन की तीव्रगामी राजनीतिक चेतना के परिणाम स्वरूप बीसबीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की गति तेज हुई। संख्या बढ़ी तथा उनके प्रसार-प्रसार के नये तरीके ईजाद किए गए। इस सबके बावजूद अंग्रेज सरकार बेहद चौकन्नी थी। नये प्रेस अधिनियम की आड़ में उसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लगातार बाधित किया। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र 'दैनिक प्रकाश' द्वारा 'प्रताप की मनाई' शीर्षक समाचार इस बात की पुष्टि करता है

कि बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों में अखबार के आगमन पर प्रतिबन्ध लगाया गया। दैनिक प्रकाश ने लिखा है - ''देशी रियासतों को 'प्रताप' साँड़ को लाल झंडी का काम करता है। सात रियासतवालों ने तो पहले से ही 'प्रताप' का अपनी रियासतों में आना रोक दिया था, परन्तु आज आठवां नंबर उदेपुर रियासत का हुआ। उदेपुर रियासत में प्रताप का जाना एकदम बंद कर दिया गया है। उपर्युक्त परिस्थितियों में इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की हर कोशिश को अंग्रेज सरकार द्वारा बाधित किया गया, फिर भी इनकी प्रचार संख्या में लगातार वृद्धि जनजीवन में राजनीतिक जागरण की प्रक्रिया में पत्रकारिता की प्रभावशाली भूमिका, का संकेत कती है। बुन्देलखण्ड से प्रसारित अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने सन् 1920 ईस्वी के असहयोग आन्दोलन प्रस्ताव के निश्चय का जोरदार स्वागत किया, साथ ही भारतीय जनमानस को प्रेरित कर असहयोग आन्दोलन प्रस्ताव के निश्चय का जोरदार स्वागत किया, साथ ही भारतीय जनमानस को प्रेरित कर असहयोग आन्दोलन में प्रभावी भूमिका के लिये आधार तैयार किया। यही कारण है कि सन् 1920 के दौरान बुन्देलखण्ड से बड़ी संख्या में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार का कार्य नये जोश के साथ प्रारम्भ हुआ। इसके पीछे एक और कारण था। अंग्रेज सरकार ने 1922 में कठोर प्रेस अधिनियम (सन् 1910) की समाप्ति की घोषणा की थी। अंग्रेज सरकार ने इस प्रेस अधिनियम के तहत विभिन्न मुद्रणालयों से ली गई जमानतें वापस कर दीं। जिससे पत्रकारिता जगत ने राहत की सांस ली। इसमें स्वाधीनता आन्दोलन में गति आई, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ और पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के आरंभिक दौर में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया, जिसके मूल में हिन्दी के प्रति तथाकथित साक्षरों की उदासीनता तथा पाठकों द्वारा पत्र का मूल्य न चुकाना है। इस संदर्भ में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है - 'हमारे प्रांत की भाषा ही है, परन्तु स्वदेश और स्वभाषा के शत्रु उसे अस्पृश्य और अपाठ्य समझते हैं। इसी से उर्दू पत्रों की अपेक्षा हिन्दी के पत्रों की संख्या आधे से भी कम रही (89:40) मातृभाषा के इन द्रोहियों की बुद्धि भगवान ठिकाने लाएं। इसमें से पांच फीसदी अंग्रेजी के धुरंधर पंडित होंगे। उन्हें रोज पायोनियर और इंग्लिशमैन पढ़े बिना कल नहीं पड़ती। इनकी शिकायत है कि हिन्दी में कोई अच्छा पत्र ही नहीं। पढ़े क्यों? परन्तु इनको यह नहीं सूझता कि अच्छे हिन्दी पत्र निकालने वाले क्या किसी और लोक से आवेंगे? या तो तुम खुद निकालो या औरों के पत्र लेकर उन्हें उत्साहित करो या पत्र निकालने वालों की मदद करो। आगे वे लिखते हैं कि यहां के मासिक पुस्तक प्रकाशक सदा घाटे का दुखड़ा रोया करते हैं। बेचारों को घर के धान को पयार से मिलाना पड़ता है। बहुतेरे को तो यहां तक घाटा होता है कि एक बार पत्र निकालकर फिर निकालने का उन्हें साहस भी नहीं होता। सारांश यह है कि पग-पग पर बाधाओं के आने पर भी समर्पित पाठकों ने हिन्दी पत्रकारिता को जारी रखा। इन पत्र-पत्रिकाओं ने अपने अग्रलेखों एवं संपादकीय टिप्पणी के अन्तर्गत ऐसी राजनीतिक, सामाजिक घटनाओं को प्रमुखता से छापा, जिनमें आम भारतीय जनता की रूचि थी। परिणामस्वरूप पत्रिकाओं की बिक्री में इजाफा हुआ।

स्वाधीनता के क्रांतिकारी दौर में हिन्दी भाषा क्षेत्रों में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में तेजी आई। भारतीय नौजवानों को उद्वेलित करने वाले अनेक प्रकाशन इसी दौर में सामने आये, जिन्हें, अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'लोकवार्ता' पत्र ने अपनी पीड़ा इस प्रकार व्यक्त की है - प्रेस और कागज आदि की असुविधाओं के कारण छपाई का ठीक प्रबन्ध नहीं हो पा रहा है। इस अंक के प्रकाशन में अवांछनीय विलंब हो गया। नवीन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि पर लगे हुये सरकारी प्रतिबन्ध जब तक दूर नहीं जाते तब तक आशा है, इस प्रकार की त्रुटियों के लिये पाठक हमें क्षमा करेंगे। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य स्पष्ट रहता था वे अपने अंकों में अपने निहितार्थ आमजनता को प्रेषित करते थे। अगस्त 1894 में सागर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'बालविलास' उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करती है - ''समाचार पत्र संसार का वर्तमान बतलाकर विद्या की उन्नकि करती है इसलिये बालकों को विद्या सीखने से सहायता देने के लिये ये मासिक पत्र शामिल किया गया है। इसमें किसी विख्यात पुरुष का जीवन वृतांत, शास्त्र व उपदेश की बातें और समाचार रहा करेगा।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं से संबंधित फाइलों एवं अभिलेखागारों में सुरक्षित दस्तावेजों से यह स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता आन्दोलन से क्रमशः विकसित होती राजनीतिक चेतना के अनुरूप ही इस क्षेत्र में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार में वृद्धि हुई। इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार-प्रसार का गहरा सम्बन्ध बुन्देलखण्ड के जनमानस की राजनीतिक चेतना से था।

हिन्दी पत्रकारिका के उद्भव काल से ही पाठक की केन्द्रीय भूमिका रही है। किसी भी साहित्यिक रचना की सफलता-असफलता का निर्धारण एक खास पाठक वर्ग ही करता है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पत्र-पत्रिकाओं ने एक समझ भरा पाठक वर्ग तैयार किया, जो समाचार पढ़ने के अलावा सुनने पर भी विश्वास करता था। यह सत्य है कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ही सम्प्रेषण यात्रा ही अधिकांश समाचार पत्रों की लोकप्रियता का जरिया बनती है। हम जानते हैं कि बुन्देलखण्ड की आम जनता अधिकांशतः अशिक्षित थी। अतः मुख से मुख वाली अन्तःक्रिया ही समाचार सम्प्रेषण का मुख्य साधन था। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के पास एक निश्चित पाठक वर्ग के न होने के पीछे मुख्य कारण पत्र-पत्रिकाओं के प्रति उदासीनता का भाव था और यही कारण है कि कुछेक उत्साही और समर्पित संपादकों और पत्रकारों के आगे आने के बावजूद पाठकों की कमी पत्रकारिता के विकास में बाधा बनकर आई। 'आजकल समाचार पत्रों को जन्म लेते ही राजयक्ष्मा की बीमारी घेरती है। यद्यपि इस रोग के होने के कई कारण हैं। तथापि अधिक व्यय होना ही अधिक व्यवसाय है, अधिक खर्च होने में एक बड़ा कारण यह भी हो सक्ता है कि पत्रों के अधिक ग्राहक नादि हन्द निकल जाते हैं।' इससे सिद्ध होता है कि पत्रकारिता अपने उद्भव काल से ही ग्राहक और पाठक की समस्या से जूझ रही थी।

बुन्देलखण्ड में राजनीतिक चेतना के प्रसार के साथ ही गांव का एकाकीपन खत्म हुआ। यातायात की सुविधाओं ने शहर की राह दिखाई। प्राकृतिक तौर पर अभेद्य इस भूखण्ड में प्रकाशन आदि के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये, ज्ञान की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड की जनता का संपर्क हुआ। पत्रकारों ने जनता की सामाजिक और राजनीतिक चेतना को विकसित किया। हम कह सकते हैं कि बुन्देली जनता का राजनीतिक समाजीकरण हुआ। श्रीरामपुर से अपनी यात्रा शुरु करने वाले मुद्रणालय ने अपने पांव बुन्देलखण्ड के कोने-कोने में फैलाये, जिसके परिणामस्वरूप अनेक शहर और कस्बों से पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं और एक निश्चित पाठक वर्ग तैयार हुआ। पाठक तक अपनी पहुँच के लिये किये गये प्रयास के सम्बन्ध में ये उल्लेखनीय है कि 'बुन्देलखण्ड केसरी' के संपादक पत्र की प्रतियां गांव के कांग्रेस कार्यकर्ता या मुखिया के यहां पहुंचाते थे। रात्रि के समय सभी गांव वाले एक जगह एकत्र होते थे, तदुपरांत शिक्षित व्यक्ति ऊंची आवाज में पत्र के लेख, समाचार एवं कवितायें पढ़कर सुनाता था। पत्र की वजह से जिन पाठकों या कार्यकर्ताओं को कठिनाईयां होती थीं, उनके प्रति संपादक अगले अंक में धन्यवाद प्रकाशित करते थे - ''हम अंत में उन उत्साही नवयुवकों को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने परिश्रम करके अदम्य उत्साह के साथ 'बुन्देलखण्ड केसरी' की रक्षा की है। हम विशेषांक के काम में मदद देने वाले नवयुवकों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होनें रातों को जागकर काम किया और केसरी को यह रूप प्रदान किया। हम कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड केसरी की लोकप्रियता एक खास अशिक्षित जनसमुदाय के साथ ही बुद्धिजीवी एवं मध्यम वर्ग में भी रही। इसका स्वरूप राष्ट्रीय न होकर क्षेत्रीय ही रहा। वस्तुतः पाठकों की संख्या का कम होना प्रत्येक समाचार पत्र की चिंता का विषय था, जिसके सम्बन्ध में यथास्थान महत्वपूर्ण टिप्पणियां की गई हैं। तत्कालीन प्रत्येक पत्र-पत्रिका का यह प्रयास होता था कि पाठकों की बौद्धिक क्षुधा को शांत करें। पाठकों की समस्या से जुड़ा एक और उद्धरण उनकी चिंता को शायद सही ढंग से व्याख्यातित करता है - ''गत सोलह वर्षो से प्रकाशित होने पर भी हमारी संख्या हजारों में नहीं पहुंची, जबकि हमारी जनसंख्या लाखों से अधिक है। इस शिथिलता का कारण अनुमानतः यही है कि पत्रिका जिनके नाम जाती है, वही पढ़कर फाइल कर देते हैं या गृह के कू ड़े के साथ गनौरे पर जाती है। प्रार्थना है हमारे सहृदय पाठक पढ़ें और अपने मित्रों को पढ़ावें।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रण कला के सम्यक विकास न होने के कारण पत्रों के प्रकाशन की स्थिति, उनका प्रचार-प्रसार और पाठक वर्ग सीमित रहा। पर यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक से ही बदलती है। उद्भव काल से ही पत्रकारिता का समुचित प्रसार-प्रसार न हो पाने के पीछे पाठकों की उदासीनता ही मूल कारण रही है। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि ''एक बार पत्र निकालकर फिर निकालने का उन्हें साहस भी नहीं होता। इसके कई कारण हैं, एक तो यहां शिक्षितों की संख्या कम है, दूसरे सामर्थ्यवान और पढ़े-लिखे लोग मासिक पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। तीसरे, जो पढ़ते हैं वे गांव के पैसे खर्च नहीं करके पढ़ना चाहते, मांग-मांग कर या प्रकाशक को धोखा देकर काम निकालते हैं, इसमें वे अपना अपमान नहीं समझते। कम मूल्य देकर मांगने वालों की भी कमी नहीं है। द्विवेदी जी का यह कथन तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है।

-डॉ. संतोष भदौरिया, उपाचार्य एवं क्षेत्रीय निदेशक
महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी वि.वि., वर्धा (महाराष्ट्र)

बुन्देली : कुछ विश्लेषण कुछ विचार

-डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

वर्तमान समय में बुन्देली सहित सभी बोलियाँ हासमान स्थिति में है। इससे हिन्दी की सबसे बड़ी हानि यह हो रही है कि उसकी सूक्ष्म अर्थवत्ता वाली शब्दावली की धरोहर आज भी उसकी बोलियों के ही पास है, जिसे हिन्दी को आत्मसात करना अभी शेष है। हिन्दी की इस अधूरी विकास यात्रा में उसके स्रोतों का सूख जाना चिन्ता का विषय है।

बुन्देली के हास होने के कारण है :

अशिक्षा से शिक्षा में संक्रामित होने वाली पीढी इसे गँवारु भाषा समझ कर इसे बोलने में हीनता का अनुभव करती है। मैने अपने शोध कार्य के दौरान सूचकों के वर्ग बनाकर बुन्देली की हासमान स्थिति को आँकने का प्रयास किया था। निष्कर्ष यही रहा कि ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षित वर्ग हीनता-बोध के कारण बुन्देली बोलने से बचता है और नगरीय शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों की बोली में बुन्देली के साथ हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों संकरता से बुन्देली का स्वरुप विकृत हो रहा है तथा सूक्ष्म अभिव्यक्ति के बुन्देली शब्दों मुहावरों कहावतों के प्रयोग से बचते हुए संकर भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग कर काम चलाया जाता है।

अच्छी एवं आशाजनक बात यह है कि प्रबुद्ध वर्ग बोलियों की महत्ता के प्रति जागरुक हो रहा है। वह उसे वाणी व्यवहार में लाये चाहे नहीं, लेकिन जन सामान्य को अपनी बोली की अस्मिता, महत्ता और स्वाभिमान को पहचनवाने की कोशिश कर रहा है, किन्तु इसकी भी कुछ सीमाएँ है। प्रबुद्ध लोग ही मिल बैठ कर आपस में इस विषय पर चर्चा कर लेते हैं। उनमें से जो लेखक और कवि होते हैं वे अपनी भाषा के प्रति सचेत भी हो जाते हैं, परन्तु असल समस्या सामान्य जन तक अपनी बात पहुँचाने की जो है जिसकी इन बातों में कोई विशेष रुचि नहीं है। प्रबुद्ध वर्ग के पास उन तक अपनी बात पहुँचाने का प्रभावी माध्यम नहीं है।

दूसरी एक बात और है। उस प्रबुद्ध वर्ग में भी कई तरह के लोग हैं। एक वे लोग जिनके पास बुन्देली के उत्थान के लिए निष्क्रिय या बिल्कुल हवाई सोच है।

दूसरे वे लोग हैं जो बिना किसी सोच और तर्क के तुलसी, केशव, बिहारी आदि किसी भी कवि की भाषा को बुन्देली कहकर बुन्देली के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं।

तीसरे वे लोग हैं जो बुन्देली को परिनिष्ठित हिन्दी का बिगड़ा हुआ रुप मानते हैं। ऐसे लोग जब भी बुन्देली में कुछ व्यावसायिक लेखन का प्रयास करते हैं तो संस्कृत से हिन्दी में आत्मसात तत्सम शब्दों को तोड़-मरोड़ कर कृत्रिम बुन्देली बनाते हैं।

चौथी किस्म के लोग बुन्देली के शब्द समूह और व्याकरण के स्रोत एवं विकास पर पड़ने वाले समाजैतिहासिक प्रभाव पर तुलनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि रखते हुए भाषा वैज्ञानिक ढंग से चिन्तन करते हैं तथा इस समस्या के प्रति सचेत हैं कि बुन्देली भाषी क्षेत्र बहुत विस्तृत है और उसकी भौगोलिक स्थिति काफी विषम है। नदी नाले वन पर्वतों आदि प्राकृतिक अवरोधों और बहुत पहले से अनेक राजनैतिक इकाइयों में बंटे रहने के कारण मौलिक न होने पर भी इसके स्वरुप में कुछ दृश्यमान भेद हो गये हैं। इनके कुछ समाजैतिहासिक और कुछ मुखसुख तथा स्थानीय ध्वनि प्रवृत्ति मूलक कारण हैं ऐसी स्थिति में इस वर्ग के लोग बुंदेली के एक ऐसे मानक रूप को उभारने के लिए सचेष्ट हैं जो पूरे बुन्देलखंड अर्थात पूरे बुन्देलीभाषी क्षेत्र में सर्वमान्य हो।

वस्तुतः अन्य लोक भाषाओं की तरह बुन्देली का विकास भी वेदकालीन प्राकृत दूसरी प्राकृत और फिर तीसरी प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश से हुआ है जो आज के साधारण वाणी व्यवहार में प्रचलित हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में कुछ स्थानीय रूप उभर आये थे। इस कारण उनसे विकसित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और बोलियों में भेद हो गये हैं। बुन्देली का विकास शौरसेनी प्राकृत और उसी के अपभ्रंश से हुआ है। इसलिए हमारी शब्द सम्पदा का प्रमुख स्रोत यही है।

दूसरी और वैदिक भाषा (छन्दस) का प्राकृत रुप जब अधिक विकसित होने लगा तो महर्षि पाणिनी ने उसका परिमार्जन या संस्कार कर उसे अपने महान् ग्रंथ अष्टध्यायी के द्वारा नियमों में आबद्ध कर दिया। महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य लिखकर कात्यायन ने प्रमाणवर्तिक लिखकर पाणिनी के काम को और आगे बढ़ाया। इन्ही ग्रंथों के द्वारा अनुशासित तत्कालीन भाषा संस्कार की हुई भाषा अर्थात् संस्कृत कहलाई। यही संस्कृत भाषा साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, धर्म,

दर्शन, कर्म-काण्ड सम्बन्धी ग्रंथों के लेखन के लिए परिनिष्ठित भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी।

इस तरह बुन्देली को एक ओर भाषा के लोक प्रवाह से शब्द-सम्पदा विरासत में मिली। यह शब्दावली अधिकांश तत्सम रूपों में प्रचलित है। जो शब्द लोक व्यवहार में अधिकतर प्रयुक्त होते रहे, उनमें किंचित परिवर्तन या ध्वनि विवृत्ति हो गयी है। जैसे- चूर्ण, आयुर्वेद का शास्त्रीय शब्द है। लोक व्यवहार के अधिक निकट रहने के कारण चूरन हो गया और यही शब्द भाषा के लौकिक विकास के सोपानों को पार करता हुआ आया तो चून हो गयाऔर अपने निकटस्थ अर्थ में (मोटे अनाजों का आटा) रूढ होकर प्रचलित है। धरम, करम, ओखद सराध आदि इसी कोटि के शब्द हैं। बड़े शब्दों में अवश्य कुछ अधिक परिवर्तन हो गया है। जैसे- वेश्वानर से बैसान्दुर, आयुर्वल से आरबल, चतुर्वर्द्ध से चौबर्द आदि।

इसके अतिरिक्त अपभ्रंशों में ध्वनियों की घिसावट से ऊब कर भी बोलियों में उद्‌भव काल से ही शब्दों के पुर्ननिर्माण या मूल रूपों की ओर लौटने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी थी।

अतएव जो भी शब्द-सम्पदा बुन्देली के पास है चाहे वह उपर्युक्त दोनों स्रोतों से हो, चाहे अन्य भाषाओं के स्रोत से हो वह सब उसकी अपनी है। एक उदाहरण दृष्टव्य है। मिजाज शब्द कोशीय अर्थ जब तक स्वभाव है तब तक बुन्देली का नहीं है, उर्दू का है, किन्तु जब वह बुन्देली में पद रूप ग्रहण कर घमण्ड का अर्थ देता है तब भी क्या उसे उर्दू का कहा जायेगा ?

हमें अपने मस्तिष्क यह भ्रम निकाल देना होगा कि जो निम्नकोटि की शब्दावली है वह बुन्देली की है और आवश्यकतानुसार जिन शुद्ध और उच्चकोटि के शब्दों का हमें बुन्देली में प्रयोग करना पड़ता है, वे सब परिनिष्ठित हिन्दी के हैं, जिन्हें हमने उधार लिया है। तत्समशब्दों को विकृत कर उनका बुन्देलीकरण करने का प्रयास यह सिद्ध करता है कि बुन्देली एक दरिद्र बोली है, हिन्दी की सहायता के बिना इसका काम नहीं चलता। जबकि यथार्थ यह है कि बोलियों तथा उनकी सगी और मौसेरी बहिनों को मिलाकर और अपना-अपना योगदान देकर पारस्परिक सुबोधता के आधार पर सम्पर्क और अधिक व्यापक साहित्य रचना के लिए हिन्दी को खड़ा किया है। खड़ी बोली (मेरठ के आस-पास की बोली) उसकी माँ है और अन्य हिन्दी बोलियाँ उसकी मौसिएँ है।

बुन्देली एक समृद्ध भाषा है। इसके पास लिखित और मौखित परम्परा में पर्याप्त लोक साहित्य है, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि बहुत सी लिखित साहित्य प्रकाश में नहीं आ सका है, बहुत सा नष्ट हो गया है। लोक साहित्य में से प्रमुख, विद्या कहानी, बुझौअल, अटका आहाने आदि जो मनोरंजन के साधन थे, उनको मनोरंजन के सस्ते साधनों ने हाशिए पर धकेल दिया है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास में बुन्देली को पर्याप्त प्रकाश नहीं मिलने के भी कारण हैं। एक इसका नाम बुन्देला क्षत्रियों के नाम के साथ जुड़े होने के कारण इसके ही कई उपरूपों में थोड़ी-थोड़ी स्वाभावित भिन्नता के आधार पर अन्य कई जातियों ने उन पर अपनी जाति के नाम की छाप लगा दी। जैसे- लुधाँती, पँवारी, भदौरी, तवरधानी, सिकरवारी आदि कुछ उपबोली रूप क्षेत्रों के नामों के साथ जुड़ गये। जैसे- चौरासी की बोली, मरैठी, सगरयाऊ आदि। साधारण लोगों की दृष्टि में बुन्देली बुन्देला राज्यों और उनके आस-पास के क्षेत्रों की ही भाषा थी।

दूसरा यह कि ब्रजभाषा से इसका सगा सम्बन्ध होने के कारण इसका बहुत सा साहित्य ब्रजभाषा के खाते में जाता रहा है। जबकि यथार्थ यह है कि ब्रज भाषा का जो साहित्यिक स्वरुप है उसकी मूल प्रकृति ग्वालियरी है, जो ब्रज और बुन्देली के बीच की कड़ी है और बुन्देली के अधिक निकट है। सूरदास जी बुन्देलखंड (ऑतरी के आस-पास) से ब्रज में जा बसे थे। उन्होने अपने ललित पदों में सम्पूर्ण भागवत कथा को कह डाला। उनके पद प्रभूत संख्या में थे उनकी भाषा सरल थी और वे प्रेम और भक्ति के रस में सराबोर थे। इस कारण शीघ्र ही वे इतने लोकप्रिय हो गये कि उन्हीं की भाषा ब्रज भाषा के मानक रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। इस कारण साहित्यिक ब्रजभाषा से बुन्देली की अधिक निकटता होने से हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने बुन्देली की अलग पहचान करने की माथापच्ची नहीं की। धन्यवाद है ग्रियर्सन को जिन्होने बुन्देली की व्यापक अस्मिता को प्रथम बार पहचाना और अपने अद्वितीय ग्रंथ लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया में उसे ब्रजभाषा से पृथक मान्यता दी।

बुन्देली का स्वरुप चार भागों में बंटा हुआ है-

1. भद्र बुन्देली या रजायसी बुन्देली, इसे किंग्स बुन्देली भी कहा जा सकता है। इसके आज्ञावाची प्रयोग बहुत विशिष्ट होते हैं। मध्यम पुरुष का सम्बोधन प्रायः नहीं किया जाता है, उसकी वीरता, उदारता आदि के प्रसंगों में तो किया जाता है किन्तु आदेशार्थक वाक्यों में केवल इच्छित क्रिया के सम्पन्न होने की, मध्यम पुरुष के समक्ष इच्छा प्रकट की जाती है। जैसे- पधारवै होय (जू) इस वाक्य में यद्यपि जू सम्बोधन को आभास देता है। परन्तु बहुत गौंड़ ढंग से।

इसमें अधिकतर तत्सम या रूढ़ हुई लक्षणा, व्यंजना मूलक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। यह अत्यंत शिष्ट होती है। यह बुन्देलखंड के राजघरानों, शिष्ट समाज तथा उनसे सम्बन्धित लोगों में बोली जाती है। बुन्देलखंड के बुन्देला, पमार तथा धँधेरे (तीन कुरीके क्षत्री) तो मानो इसके संरक्षक ही हैं।

2. व्यावहारिक बुन्देली इसमें मधुरता के साथ-साथ आत्मीयता का पुट रहता है। थोड़े पूर्व परिचय के कारण या अपरिचय की स्थिति में शिष्टता के कारण। उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत है :-

1. चलौ जौ दावजू, अबेर तौ आ भई जात।
2. अनुप को ठाकुर आव, अपने घर कितै हैं ?

इसमें उत्तम पुरुष एक वचन के लिए हम और मध्यम पुरुष एक वचन के लिए तुम या आयुवृद्ध आदरणीय के लिए अपुन का प्रयोग होता है। बहुवचन होने पर भी इनके साथ न जोड़कर बहुवचन बनाने का भी चलन है। जैसे - हमन, तुमन।

3. ग्राम्य बुन्देली - इसमें ग्राम्यत्व के कारण शिष्टता का थोड़ा सा आभाव रहता है। में, तें, तोय, मोंय, तोरौ, रे, री आदि सर्वनामों का प्रयोग बहुलता से होता है। सम्भ्रान्त जन से वार्तालाप में तुम और अपुन शब्दों का प्रयोग होता है। म्हराज के सम्बोधन और जू के प्रयोग से गिरते हुए भाव की क्षतिपूर्ति हो जाती है। इसकी सुरलहर भी सामान्य बुन्देली से थोड़ी भिन्न होती है। भावानुकूल बलाघात की प्रवृत्ति भी इसमें अधिक पायी जाती है।

4. सम्पर्क बुन्देली- यह उन लोगों की बुन्देली है जिनकी कोई अन्य मातृभाषा है और बुन्देली भाषी क्षेत्र में लम्बे प्रवास के कारण बुन्देली सीख लेते हैं। उनके उच्चारण को उनकी मातृभाषा की सुरलहर और बलाघात प्रभावित करता है। यह कोई स्थिर रूप नहीं है लेकिन बुन्देली के समग्र वाणी व्यवहार पर चिन्तन करते समय इस पर विचार करना आवश्यक है।

बुन्देली का हल्ला मचाना तो राजनैतिक कार्य जैसा है। ठोस कार्य करने और बुन्देली को भाषा के स्तर पर स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि-

1. लिखने में मणिकंचन शैली अपनाई जाय।

2. बुन्देली के मानकीकरण का प्रयास करना। इसके अंतर्गत निम्नांकित बिन्दु हो सकते हैं :-

अ- विभिन्न बुन्देली क्षेत्रों में व्यवहत कारक चिन्हों, वचन परसर्गों, सर्वनामों और बलवाचियों को उनके बहुप्रचलन या कुलीनता (संस्कृत से उत्पत्ति और निकटता) के आधार पर एक रूप कर अपनाना। इसके लिए बुन्देली सम्मेलनों में प्रस्ताव पास कराये जा सकते हैं।

ब- साहित्य निर्माण, विशेषकर गद्य लेखन।

द- बुन्देली लोक साहित्य-संकलन, सम्पादन, संरक्षण, कोश निर्माण।

य- बुन्देलीखंडी संस्कृति का इतिहास, क्योंकि संस्कृति और साहित्य का धनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सांस्कृतिक ज्ञान के अभाव में कभी-कभी प्राचीन साहित्य दुरूह हो जाता है।

र- बुन्देली का सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भाषावैज्ञानिक अध्ययन होते रहना चाहिए।

ल- शोध- प्राचीन साहित्य की खोज, सूचीकरण, संकलन, सम्पादन, प्रकाशन, व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा जो भी संभव हो।

यदि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर कार्य किया जाये तो बुन्देली पर कुछ उपकार हो सकेगा.अन्यथा बुन्देली संस्कृति तो विस्मृति के गर्त में डूब ही रही है, भाषा भी डूब जायेगी।

वसन्त पंचमी-
11.02.2008

कैलाश द्विवेदी
पुरानी नजाई, टीकमगढ, (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड का लोक जीवन एवं प्रचलित परम्परायें

- राधाकृष्ण बुंदेली

बुन्देलखंड का अस्तित्व लाखों वर्ष बीत जाने के बाद भी आज भी मौजूद है हमने जिस संस्कृति को जन्म दिया उसका संरक्षण भी किया इसीलिए आज सम्पूर्ण बुंदेलखंड अपनी अलग पहचान रखता है यह प्रदेश 4 सरिताओं से घिरा हुआ है इसके मध्य में विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियाँ हैं जहाँ बुन्देलखंड की सभ्यता पल्लवित हुई इसलिए हम बुन्देलखंड को कुछ इस तरह परिभाषित करते हैं।

इति यमुना उत बेतवा, इति चम्बल, उत टौंस।
छत्रसाल से लरन की, रही न काहु हौंस ।।

पहले यह भूमि खंड चेदि और दर्शाण दो गणराज्यों में विभाजित था चन्देल शासन काल में इसे जुझौती देश के नाम से पुकारा गया इसी समय इसका एक भाग कल्चुरियों के आधीन था कालांतर में यह भाग गौणवंशी राजाओं के हाथ में चला गया इसके सुप्रसिद्ध शासक संग्रामशाह, दलपतिशाह और रानीदुर्गावती थी।

बाहरवीं शताब्दी के पश्चात जब भारत वर्ष में तुर्कों का शासन स्थापित हुआ उस समय बुन्देलखंड अस्तित्व में आया इसके संस्थापक पंचम सिंह और हेमकर्ण बुन्देला थे। कालांतर में भारतीय चन्द्र, मधुकर शाह, वीर सिंह जुदेव आदि सुप्रसिद्ध नरेश थे ओरछा राज्य के बाद पन्ना राज्य और दतिया राज्य का उदय हुआ।पन्ना राज्य में महाराजा छत्रसाल से मुगलों से लोहा लेकर अपना स्थाई स्थान बनाया। उस समय से बुन्देलखंड आज तक महिमा मण्डित है।

सन् 1857 की क्रांति में बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण स्थान रहा महारानी झाँसी, झलकारी कोरिन, तात्या टोपे, राव साहब पेशवा तथा बाँदा के नवाब ने क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई आज महान दुख इस बात का है कि हम बुन्देलखंड निवासी अपनी भाषा वेशभूषा और संस्कृति भूलते चले जा रहे है। ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में हम अपनी पहचान न खो दे। इसलिए आवश्यकता है कि इस वैज्ञानिक युग में हम अपनी प्राचीन परम्पराओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करे यदि संभव हो तो उसका अनुपालन भी करे हमें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए बुन्देलखंड की पहचान जानना होगा।

हमारी सहनशीलता-

बुन्देलखंड के निवासी सदैव से सहनशील रहे हैं और उन्होंने प्राकृतिक आपदाओं में भी सहनशीलता बरती।

महुआ, मेवा, बेर, कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।
जो इतनो चाहुने होये, तो करो गुडाने सगाई।

बुन्देलखंड सदैव से प्राकृतिक आपदाये झेलता रहा है वह साहस के साथ सीमित साधनों में अपना गुजारा कर लेता था।

इन्द्र करौंटा ले गये, मघा बाध गये टेक।
बेर, करौंदा जो कहै, मरन न देहे एक ।।

सीमित साधनों में ही यहां के लोगों ने गुजारा किया। और धैर्य बनाये रखा।

अपराध और बुन्देलखंड -

यहाँ प्रारम्भ से संसाधन का अभाव रहा है और व्यक्ति समान रूप से अशिक्षित रहा है। सामान्य जनता जागीरदारों, जमीदारों और राजा महाराजाओं के शोषण का शिकार रही है इसलिए अभाव और प्रतिशोध की भावना ने अपराधों को जन्म दिया डकैतों के अतिरिक्त साधु-सन्त भी अपराधों में लीन रहे।

बैरगिया, नाला जुलूम जोर।
जहाँ साधु वेश में रहत चोर।
जब तबला बाजे धीन धीन
तब एक-एक पे तीन-तीन।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अभावग्रस्त बुन्देलखंड में भी अपराधों का वर्णन भगवान के सामने कुछ इस प्रकार किया है।

नाथ हमार यहे सेवकाई।
भूषण वसन न लेहिं चुराई।

मुगल बादशाह औरंगजेब ने भी अभावग्रस्त बुन्देलखंड में अपराधों का होना माना है।

जमी हमवार नहीं दरख फलदार नहीं।
मरद वफादार नहीं, औरत बिनयार नहीं।

यदि बुन्देलखंड में अपराध है फूलन देवी, निर्भय गुर्जर, मंगल सिंह, ददुआ और ठोकिया ने इसे अपना क्षेत्र बनाया तो उसके

भी कुछ कारण होंगे यदि इसकी उपेक्षा न होती और यहाँ के लोगों का शोषण न होता तो यहाँ अपराध भी न होता।

बुन्देलखंड की भाषा -

सम्पूर्ण बुन्देलखंड में आवागमन साधनों का अभाव था इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग बुन्देली भाषा की उपभाषायें पनपी बाँदा जनपद और हमीरपुर जनपद में बनाफरी, त्रिरहहारी, लुधाटी, कुल्हाई, अन्तरपूठा, गहोरापठा, आदि बोली पनपी सम्पूर्ण आल्ह खंड बनाफरी भाषा में लिखा गया इसका एक नमूना प्रस्तुत है।

बारह बरस लौ कूकुर जिवौ
सोलह बरस लो जियो सियाँर
बरस अट्ठारह क्षत्रिय जियौ
बाकी जीवन कौ धिक्कार।

बाँदा जनपद में बोली जाने वाली भाषा कुछ इस प्रकार है।

चुकरिया सन्तन कै श्याम्हा चुरै मूंग कै दार
हरदी लाइन, मिर्चा लाइन, कन्डा लाइन चार
गेहूँ, चना का आटा लाइन, बनो है पूर भंडार
चुकरिया सन्तन कै, श्याम्हा चुरै मूंग कै दार।

पन्ना, छत्तरपुर, टीकमगढ, दमोह तथा झाँसी में स्तरीय बुन्देलखंडी बोली जाती है जिसका उदाहरण यह है -

काये करोड़े तुम किते गये हते अबे तुम आये
बापे आये हते बाई खा पूछत ते हमने कह दई बाई
छतरपुर गई वे चले गये।

दतिया में पवारी बोली जाती है। जबलपुर में गौणवानी बाली जाती है। यह भाषाई अन्तर आवागमन के संशोधन के आभाव में पनपीं।

वेशभूषा-

बुन्देलखंड प्राचीन काल से आदिवासियों का निवास स्थल रहा है। उनकी वास्तविक वेशभूषा उपलब्ध शैलचित्रों में देखने को मिलती है। जब वस्त्रों का अविष्कार हुआ उस समय यहाँ लोग कमर के ऊपर का वस्त्र पहनते थे। जिसे धोती या पनचा या पर्दनी के नाम से पुकारते थे। सिर पर साफा बाँधते थे तथा हाथ में लाठी लेकर चलते थे पाँव में पन्हिया यालतकारियाँ पहनते थे तथा समान ले जाने के लिए पोटली या पुटकी का इस्तेमाल करते थे। स्त्रियों की वेशभूषा पुरुषों से अलग थी लंहगा, चुनरी, धोती, जम्फर के अतिरिक्त अनेक आभूषण भी स्त्रियां धारण करती थी। सुतिया, ठुसी, कर्णफूल, बेंदी, कड़ा, झाँझें, गुलूबन्द, बाजूबन्द, करधनी, बिछिया आदि स्त्रियों के आभूषण थे विवाहित स्त्रियां पर्दा करती थी कभी-कभी सास बहू के झगड़े अशान्ति का कारण बनते थे।

कोऊ इते आऊ री, कोऊ उते जाऊ री
नोनी दुलइया को देख जाओ री
खावे की बिरिया न लेवे डकार
काम की बिरिया चढ़ आवे बुखार।

स्त्री पुरुष दोनों अपने दायित्व का निर्वाह करते थे। किन्तु स्त्रियों को विशेष स्वतंत्रता नहीं थी।

तीज-त्यौहार और धर्म :-

यहाँ के निवासी परम्परागत धर्म का अनुपालन करते थे शैवमत, शक्तिमत, वैष्णव उपासना, गणेश उपासना, सूर्य उपासना तथा बहुदेव के उपासक थे ये लोक धार्मिक स्थलों, तीर्थ स्थलों तथा तीज त्यौहारों का अनुपालन करते थे। दीवाली, दशहरा, मकर संक्रांति, होलि आदि त्यौहार पर उनकी पूर्ण आस्था थी। इसीलिए सम्पूर्ण बुन्देलखंड में चित्रकूट, कालिंजर, ओरछा, मैहर, खजुराहो, अमरकंटक आदि तीर्थ स्थल माने गये इन स्थलों में समय-समय पर मेलों का आयोजन होता है जहाँ व्यक्ति सामूहिक रूप से पूजा, अर्चना करते थे किन्तु पूजन की यह विधि अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग है।

मनोरंजन के संसाधन-

यहाँ के लोग परम्परागत खेलकूद, नाटक, प्रहसन और लोक संगीत के माध्यम से अपना मनोरंजन करते हैं। यह मनोरंजन धार्मिक लोक संगीत समान लोक संगीत, प्रहसन, नौटंकी, कथा कहना या सुनना, चौपर, शतरंज आदि से अपना मनोरंजन करते थे इनकी शैली बड़ी रोचक होती थी उदाहरण के लिए यह लोक संगीत श्रोताओं का अच्छा मनोरंजन करता है।

गैला में ठाढ़ी गुईयाँ
कहे कैसे भी के है सईयाँ
एक कहत मोरो दारू पियत है
सो नारी में लेत पलतईयाँ।

इसके अतिरिक्त अनेक खेलकूदों से लोगों का मनोरंजन होता था।

संस्कार-

बुन्देलखंड के निवासी अपने व्यवहारिक जीवन में अनेक संस्कारों का अनुशरण करते थे इनमें गर्भाधान संस्कार, जन्म संस्कार, अन्न प्रासन, मुंडन, कनछेदन, पाटी पूजा, विवाह संस्कार एवं मृत्यु संस्कार प्रमुख थे। लेकिन तीन संस्कारों पर विशेष बल दिया जाता है। जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार प्रमुख संस्कार थे इनको अलग-अलग स्थानों में और अलग-अलग जातियों में अलग ढंग से मनाने की रिवाज था संस्कारों में ब्राह्मण, नाई, माली, धोबी, मेहतर, दर्जी आदि की विशिष्ट भूमिका रहती थी।

तथा अलग-अलग संस्कारों में अलग-अलग वेषभूषा धारण की जाती थी। विवाह संस्कार में मौर धारण करना व जामा पहनना अनिवार्य था।

लोक आचरण एवं लोक व्यवहार-

यहाँ के व्यक्ति चार वर्णो में विभाजित थे तथा उनकी सैकड़ों उपजातियां थी छोटी जाति के लोग बड़ी जाति का सम्मान आदर सूचक शब्दों से किया करते थे। जैसे- पण्डित जी पावलागी, जय गोपाल जिउ, राम-राम भैया, जय राम जू की आदि शब्द प्रयोग में लाते थे। छोटा व्यक्ति बड़े व्यक्ति के चरण स्पर्श करता था। मगर बाँदा जनपद में भेट भलाई पूंछने का यह कायदा प्रचलित था।

गृह स्वामी (बाहरी व्यक्ति से)	-	कहाँ देश के हाल हवाल
दूसरा व्यक्ति (अगन्तुक)	-	एक कै ऊपर गिरि दीवाल
पहला व्यक्ति	-	अईसा
दूसरा व्यक्ति	-	एक को मारो भईसा
पहला व्यक्ति	-	अयैं
दूसरा व्यक्ति	-	भाग बचो मैं

इस क्षेत्र में महिलाओं और औरतों का विशेष सम्मान था तथा बहनों और भाइयों में अटूट प्रेम था यथा-

ताती-ताती कुचिया, घिया में चुभकिया।
खाये मोर भइया, जुड़ायें मोर जी।।

बहनें भाई की कलाई में राखी बान्धती थी। कुंवारी कन्याओं को देवी माना जाता था और उनके पैर छुये जाते थे बहन का अपमान सहन नहीं होता था तथा बेटी की विदा में पूरा परिवार शोक मगन हो जाता था तथा कहीं-कहीं इस प्रकार के बिदाई गीत गाये जाते थे।

बीरन को दिन्हो, बाबुल महल अटारी
बेटी को दिये परदेश मोरे लाल।

यहाँ के व्यक्ति लड़कियों के ससुराल में भोजन, पानी नहीं करते थे। तथा लड़कों वालों का सम्मान बनाये रखते थे।

प्रचलित अन्ध विश्वास -

शिक्षा की कमी होने के कारण यहां के निवासी अनेक अन्ध विश्वासों पर विश्वास करते थे- भूत-प्रेत, चुडैल, बरम देवता, देवी आना पर विश्वास करते थे तथा इन बाधाओं को दूर करने के लिए टोना-टुटका तथा झाड़-फूक का सहारा लेते थे। रास्ते में खाली घट मिल जाना, बिल्ली का रास्ता काट जाना, चलते समय किसी का छींक देना आदि अशुभ माना जाता था। विधवा औरत का देखना तथा उसका शुभकार्यों में भाग लेना वर्जित था इसी प्रकार काना व्यक्ति अशुभ माना जाता था। भरे घट देखना नीलकंठ के दर्शन करना धर्म स्थल के दर्शन करना, साधु सन्तों के दर्शन आदि शुभ माना जाता था अपनी आपत्ति काल में दुर्भाग्य को दूर करने के लिए व्यक्ति ज्योतिष तन्त्र विज्ञान तथा विविध प्रकार के पूजा पाठों का अनुष्ठान करते थे तथा संकट दूर होने के बाद विविध प्रकार के आयोजन करते थे समय-समय पर मुंडन करना तीर्थों की यात्रा करना, दान लेना कथा, भजन, कीर्तन पर भाग लेना इनके जीवन की प्रक्रिया थी।

आज बुन्देली संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है और धीरे-धीरे बुन्देलखंड भी अपनी पहचान खोकर अपनी संस्कृति को खोता जा रहा है। संभवतः निकट भविष्य में वह इतिहास के पन्नों में संग्रहित दिखेगा।

- राधाकृष्ण बुन्देली
विजय पुस्तक भण्डार
बांदा (उ.प्र.)

बुंदेलखण्ड अंचल की लोकचित्र परंपरा

- डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

बुंदेलखंड अंचल में चित्रांकन की परंपरा का इतिहास अत्यंत पुरातन है। प्राक् आदिम अवस्था के गुफागेही मानव द्वारा निर्मित चित्र यहां के शैलाश्रयों में उपलब्ध होते हैं। ई. पू. पांच हजार वर्ष से भी अधिक समयांतर में अंकित चित्र यहां की विन्ध्य शैल मालाओं में चित्रित है। दमोह जिले में फतेहपुर से लेकर सिलापरी तक फैली पर्वतीय गुफाओं में और उपत्यकाओं में इस तरह की चित्र रचनायें उपलब्ध हैं। आदिम अवस्था में आचार-विचार के क्षेत्र में पार्थक्य नहीं था। एक ही विस्तृत भू-भाग में आदिम जन लगभग एक जैसी ही जीवन शैली के अभ्यस्त थे। यहां तक कि जिस भूमंडलीकरण की आज हम बात करते हैं, उसका सम्यक् स्वरूप केवल आदिम काल में ही विश्वस्तर पर प्रकट हुआ होगा। तब केवल प्रकृति भिन्नता के कारण मानवीय वर्ण में अलगाव रहा होगा। जबकि मनुष्यों के कार्यकलापों में अलगाव नहीं होगा। इसलिये पूर्णतः अप्रभावी माहौल में स्वतः स्फूर्त जोचित्र रचनायें उस काल में अंकित हुई, उनमें अद्भुत साम्य है। वैसे ही रेखांकनों से परिपूर्ण वैसी ही गति-लय वाले चित्र संसार भर में उस समय रचे गये, जैसे एक जगह देखने को मिलते हैं। अतः क्षेत्रीय स्वभाव और क्षेत्रीय कौशल इस तरह की चित्र बीथियों में स्पष्ट नहीं है, फिर भी आदिम चित्रकला के बुंदेलखंडीय चित्र प्रतिमानों में शीर्ष कोण से मध्यभाग में जुड़े दो त्रिकोणों से मावाकृति का मध्यभाग तथा उपरिगत त्रिकोण की आधार रेखा के मध्यपर स्थित लघु वृत्त से सिर तथा इसके आधार को दोनों दिशाओं में फैलाकर हाथ, एवं निम्न त्रिकोण की आधार रेखा से निम्नगामी रेखायें पैरों का अंकन करती हैं। इस तरह की मानवाकृतियों के पूर्व केवल एक खड़ी रेखा से मध्यभाग की आकृति का निर्माण किया जाता था। इसी रेखा के निम्न बिन्दु से दो रेखायें पैर के लिये एवं इसी रेखा के शीर्ष पर लघुवृत्त से सिर तथा सिर के तनिक नीचे दो फैली रेखाओं से हाथों का अंकन किया गया है। सीढ़ी, धनुष, बाण, चौपड़, जैसी आकृतियां वस्तु उपादान या वैचारिक प्रसंगों के प्रतीकार्थ के रूप में कल्पना उद्‌बूत आकृतियां हैं गुप्तकाल में बुंदेलीखंडी इलाके के चित्रादर्शों का अभाव है। तत्कालीन प्रस्तर शिल्प में अंकित बेल-बूटे, मानव, जीव,जंतु आदि की आकृतियां कहीं न कहीं चित्रकला के प्रतिमानों को भी जाहिर करती हैं। इन प्रतिमानों में मानवाकृतियों के उत्फुल्ल कपोल मांसल नितंब, कलशाकृति स्त्री-स्तन, बड़े-बड़े नेत्र आदि को प्रमुखतः से परिलक्षित किया जा सकता है। इनके अलावा इस क्षेत्र के पुष्पों की आकृतियों से बेलबूटों का अभिकल्पन है। बेला, कनेर, चंपा, चमेली आदि पुष्पों की आकृतियों के अंकन से देशज स्वभाव की झलक मिलने लगी थी। बुंदेली आचरण की पुख्ता और प्रमाणिक पहचान का सिलसिला चंदेल काल से प्रारंभ होता है। यहां तक आते-जाते बुंदेली चित्र शैली का एक खास व्यक्तित्व निर्मित हो गई थी। इस बिन्दु पर बुंदेली संस्कृति की पहचान अपनी निजता का अवबोधन करने लगी थी, इसलिये बुंदेली संस्कृति के प्रायः सभी प्रभागों में अंतरावलंबन की प्रक्रिया का समावेश हो गया था। धार्मिक अनुष्ठानों की आचार पद्धतियों में चित्ररचना का स्थान सुरक्षित हो रहा था। पूजा-पाठ व्रत उपवास, तीज त्यौहार जैसे लोकाचारों में चित्र-विधान का कर्मकांड अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा चुका था। विवाह जैसे सामाजिक संस्कारों में भी चित्र अभिप्रायों की रचना का महत्व रेखाकिंत किया जाने लगा था। उत्सवी परंपराओं में चित्रकला का केन्द्रीय स्थान निर्धारित किया जा चुका था। अतः चित्रकारों को भी सम्माननीय स्थान प्राप्त होने लगा था। चित्रकारी में व्यवसाय का प्रवेश होने की दिशायें खुल गयी थीं। यद्यपि इस व्यावसायिकता में नेग और न्यौछावर ही चित्रकला का मूल्य होता था। यह नेग न्यौछावर भी कम नहीं होती थी।

इस स्तर से चित्रकारों की पहचान भी अलग-अलग होने लगी। जो चित्रकार राजदरबारों के आश्रय में महलों और राजभवनों में चित्रकारी करते थे, वे चित्रकार राजाश्रित ही होते थे, उनकी आजीविका का संबंध समाज से नहीं था। गांव-देहात में जो चित्रकार विवाह और अन्य उत्सवों में चित्र-रचना करते थे वे चतेवरी कहे जाने लगे। इनकी आजीविका समाज पर निर्भर थी। कुछ ऐसे भी चित्रकार थे जो विभिन्न व्यवसायों के साथ चित्रकला को सहकर्म के रूप में ले रहे थे। इस तरह के लोक-चित्रकारों में गुदनहारे पुरोहित, बढई, कुम्हार, रंगरेजा आदि आते हैं। यह जो तीसरा वर्ग है, इसने चित्रकला को अपने कूल व्यवसाय का आकर्षण बनाया था। अंतिम वर्ग वह था जो चित्रकला को विश्वासों का अधार बनाकर उसकी धार्मिक प्रयोजनीयता पर केन्द्रित था। इस वर्ग में प्रायः वे स्त्रियां आतीं हैं, जो विभिन्न प्रकार की गृह सज्जा और धार्मिक विश्वासों में चित्रकला को महत्व प्रदान करती थीं। इस तरह चित्रकला का व्यापक

संसार बुंदेलखंड में प्राप्त होता है।

बुंदेलखंड की चित्रकला को माध्यम के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है -

1. भूमितल चित्रांकन
2. पट चित्रांकन
3. काष्ठ चित्रांकन
4. भाण्ड चित्रांकन
5. भित्ति चित्रांकन
6. देह चित्रांकन
7. गृह उपादान चित्रांकन

1. भूमितल चित्रांकन - इस तरह के चित्रांकन में भूमि की सतह पर अंकित किये जाने वाले चित्रों को लिया जाता है। भूमि पर चित्रांकन विभिन्न पूजा-पर्वों और उत्सवों पर होता है। इस तरह के चित्रांकन में अधिकतर चौक पूरने की कला का वैविध्य प्राप्त होता है। चौक को तो वैसे प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में पूरा किया जाता है, किंतु कुछ विशेष चौक विशेष आयोजनों में ही पूरे जाते हैं। बुंदेलखंड में विवाह के अवसर पर कन्या के घर में चढावे के लिये कलात्मक चौक पूरा जाता है। इस चौक को पूरने की संपूर्ण सामग्री वर पक्ष से आती है। हलदी, चावल, रौली और चने के सूखी भाजी का चूरा लेकर पीले सफेद और हरे रंग के मेल से पुरोहित द्वारा आकर्षक कलात्मक चौक पूरा जाता है। कंगूरों और बेलबूटों वाले इस चौक का विस्तार मंडप के बीचों बीच होता है। दीपावली पूजन में कमलाकृति का चौक पूरा जाता है इसमें खुले कमल दलों का आभास होता है। कहीं-कहीं दीपावली के दीपों को सजाने के लिये जाली चौक पूरने की भी परंपरा है। यह आड़ी-तिरछी रेखाओं से निर्मित होता है। जन्माष्टमी के अवसर पर फूल चौक की शोभा बिखेरी जाती है। फूल की पंखुरियों जैसी आकृति का यह चौक चमेली पुष्प के आकार का होता है। देवोत्थानी एकादशी को चरण चौक पूरने का रिवाज है। इसी दिन चरण-चिन्हों की अवली, चंदा, सूरज आदि का आरेखन छुई से किया जाता है। यह चित्रांकन आंगन में तुलसी, चौरे के आसपास होता है। क्वांर की नवरात्रि में भी चौक पूरने की परंपरा है। इन चौकों नौरता के चौक कहा जाता है। इन चौकों में स्वास्तिक, शेख, चक्र, आदि के आकार के चौक पूरे जाते हैं। क्वांर में ही पितृपक्ष में सुबह-सुबह दरवाजों पर उरैतियां का आरेखन छुई से किया जाता है। ये उरैतियां पुरखों के चरण चिन्ह होते हैं। घर के फर्स पर गोबर के लीपने-पोतने में भी ढिग का निर्माण गोबर और छुई से किया जाता है। ये बुंदेली चित्रकला की डिजायनों के नमूने हैं।

2. पट चित्रांकन - कपड़े, कागज, चर्म और पत्र पर किये गये चित्रांकन इस श्रेणी में आते हैं। कपड़े पर अंकित चित्रों में यज्ञ की नवमातृकायें स्थापित होती हैं। इन्हें घृत से बनाया जाता है। यह प्राचीनतम पट चित्रांकन है। जन्माष्टमी के पूजन हेतु प्रयुक्त होने वाले कृष्ण लीला के चित्रों को पट कहा जाता है। अब ये पट कागज पर चित्रित किये जाते हैं। पूर्वकाल में निश्चित ही यह चित्रांकन कपड़े पर किया जाता होगा। इसीलिये इसका नाम पट पड़ा है। कार्तिक स्नान करने वाली स्त्रियां प्रतिदिन कपड़े पर बालू से तुलसी और राधाकृष्ण की झांकियां बनाती हैं। दीपावली पर पट पर गेरू से चित्र निर्मित किये जाते हैं। इन चित्रों में चतुर्भुज एवं त्रिकोण का प्रयोग होता है। देह-यष्टि में घरा खाने बनाये जाते हैं। इन चित्रों के आजू बाजू में छोटे-छोटे कलश और दीपक अंकित रहते हैं। जैन संस्कृति के अंतर्गत धार्मि विधानों में मांडने तैयार किये जाते हैं। ये पट रेखांकन होते हैं। इनमें रंग भरे जाते हैं। वस्त्र पर रंगरेजा भी चित्रकारी करते हैं रजाईयों के सीमाबंध में बेलबूटे होते हैं जो हाथियों, घोडों, पत्रों, फूलों से सजाये जाते हैं। रजाईयों के पृष्टांकन चौक के विभिन्न छापों वाले होते हैं। इनमें लाल और सफेद रंग का प्रयोग होता है। लाल जमीन पर सफेद रेखांकन किया जाता है। चूनर पर भी छापों से चित्रांकन किया जाता है। ये मानो चूनर धर राखो लिखे पपीरा दोई छोर। मूलतः ये छापा की कला है। कागज पर चित्रांकन पांडुलिपियों में प्राप्त होते हैं। इनमें पुस्तक की विषय वस्तु से संबंधित चित्रांकन किया गया है। इन चित्रों में अधिकतर कृष्ण लीला, देवी चरित आदि का उल्लेख होता है। पुरोहित जन्मकुंडली बनाने के लिए बेल बूटे और गणेश जी के चित्र बनाते हैं। पत्रों पर चित्रांकन प्रायः व्रत उपवास के पूजन में किया जाता है। ऋषिपंचमी के पूजन पर केले के पत्र पर चंदन से पांच ऋषियों की आकृतियां बनायी जाती हैं। हल षष्ठी के पूजन पर भी पलास के पत्र पर ऐपन से हरछठ का चित्र बनाया जाता है। हरछठ में हल, सद्यःजात शिशु दूध दही वाली का चित्रांकन किया जाता है। आषाढ के तीसरे रविवार को जो पूजन किया जाता है, उसमें पान के पत्ते पर हलदी-चंदन से माताओं की चित्र-रचना की जाती है। चर्म पर चित्रांकन दो तरह से उपलब्ध होता है। एक रंगों से चित्रांकन दूसरा जरी द्वारा चित्रांकन। पुरानी बसनियों वा रंगों के चित्रांकन मिलते हैं। इन पर प्रायः फूल और लक्ष्मी चित्रित हैं। चमड़े के जूतों पर जरी से चित्रांकन होता है फूल, मोर, मुकुट आदि के चित्र सफेद, लाल, हरी चमकीली जरी से झब्बूदार चर्म-जूतों पर उकेरे जाते हैं।

3. काष्ठ चित्रांकन - काष्ठ चित्रांकन के अंतर्गत विवाह के अवसर पर बनाये जाने वाले खाम पर अंकित चित्रों को लिया

सकता है। खाम की लकड़ी को पीली हलदी से पोता जाता है। इस पीली पृष्ठभूमि पर ही लाल नीली रेखाओं से बेलबूटे बनाये जाते हैं। नृत्य करती पुत्तलिकायें भी इनपर आरेखित की जातीं हैं यह चित्रांकन वही बढई करता है, जो खाम बनाता है। मकानों की चौखट और किवाडों पर भी चित्रांकन की परंपरा है। इन चित्रों में फूल पत्ती के बेलबूटे, नृत्यरता पात्रायें, वाद्यवादन करते पुरूष, लक्ष्मी और गणेश की आकृतियों का अंकन होता है। ये रंग पक्के होते हैं। इसी प्रकार पालकी और मियाना के मेहराब जैसे कढावदार दरवाजों पर लहरियादार रेखांकनों के बीच बेलबूटे बनाये जाते हैं। उनके साथ नाचती हुई स्त्रियों की आकृतियों का चित्रांकन भी इन पर किया जाता है। इन चित्रों में प्रायः उत्सवी और प्रसन्नतावर्द्धक माहौल प्रकट होता है।

4. भांड चित्रांकन – बर्तनों पर चित्रांकन की परंपरा पुरानी है। बुंदेलखंड में मृदभांडों पर चित्रांकन अनिवार्यतः किया जाता है। गगरी, गागर, करबा, डबुलिया, आदि पर कुम्हार चित्रांकन करता है। लोक चित्र शैली के ये नायाब नमूने होते हैं। कच्चे भांड पर गेरूई पोती जाती है। इस गेरूई पृष्ठभूमि पर छुई से आकृतियां निकाली जाती हैं। प्रायः बर्तन की वृत्ताकार गोलाई में क्षैतिजिक रूप से रेखाबंध बनाये जाते हैं। ये मणिबंध जैसे होती हैं। दो मणिबंधों के बीच में सातियों से एक वृत्ताकार अवली खचित की जाती है। सुक, मयूर और आदिम चित्रों जैसी नराकृतियों का संसार भी इन घड़ों पर आरेखित किया जाता है। विवाह के समय वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष के पूजन हेतु रंगवारा जाता है। यह रंगवारा करवा या लोटे का बनाया जाता है। इस पर अनेक रंगों के बेलबूटे बनाये जाते हैं। आम पत्तों की आकृतियों और स्वास्तिक चिन्हों की आकृतियों से रंगवारा सजाया जाता है। मकर संक्रांति के अवसर पर वर पक्ष की ओर से वधू पक्ष के लिये भेंट स्वरुप गड़ियाघुल्ला भेजने का रिवाज है। गड़ियाघुल्ला जिस मटकी या मटके में भेजे जाते हैं, उस मटके पर भी चित्रांकन किया जाता है। यह चित्रांकन बेलबूटों वाला होता है। चैत्र मास के सोमवार को स्वामी जगन्नाथ का पूजन किया जाता है। इस पूजन के लिये लोटा पर जगन्नाथ जी की तस्वीर उकेरी जाती है। ये सोमवार टिसुआ सोमवार कहलाते हैं। चैत्र पूर्णिमा को पजूनों पूनों व्रत होता है। इस व्रत में जिस करवे का पूजन होता है, उस करवे पर पजूनकुमार और उसकी दोनों माताओं के चित्रों का अंकन किया जाता है।

5. भित्ती चित्रांकन – ये चित्रांकन दीवार पर होता है। गुरुपूर्णिमा को कक्ष की चार दीवारों पर गोबर से पुत्तलिकायें बनायी जाती हैं। ये बहुऐं कहलातीं हैं। नागपंचमी के पूजन हेतु घर के दरवाजों के दोनों ओर नागदेवता की आकृतियां रचीं जाती हैं। इन आकृतियों में लहरियादार सर्प-कुंडली जमाये सर्प और फन काढे सर्प का चित्रांकन काली स्याही से किया जाता है। विवाह के अवसर पर सजावट के लिये भित्ति चित्रांकन किया जाता है। दरवाजों के दोनों ओर मंगल कलश स्वास्तिक और आम्र पत्तों का अंकन किया जाता है। गणेश, ग्वालिनें गमले की चित्र-रचना इस अवसर पर होती है। अधिकतर इस तरह का चित्रांकन कन्या पक्ष के आवास पर किया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक गांव में अमीर लोग जनवासा में या अपनी बैठकखाने में विस्तार से भित्ति चित्रांकन कराते थे। इनमें दशावतारों के साथ-साथ नर्तकियों, ऋषि-मुनि, प्राकृतिक दृश्यों आदि का अंकन होता था। पुराने मंदिरों की भित्तियों पर भी इस तरह के चित्रांकन उपलब्ध होते हैं। तरह के चित्रांकन हेतु व्यावसायिक चित्रकार उपलब्ध रहते थे। इन्हें मोची या चतेवरी कहा जाता था। जन्माष्टमी के अवसर पर भी पट के चारों और बेलबूटोंदार सीमाबंध बनाने और कृष्ण लीला से संबंधित चित्र-रचना की परंपरा है। बाजारों में दुकानों के भीतर लक्ष्मी, गणेश, शिव आदि देवताओं के स्वरूपों के चित्रण की अभियोजना भी देखने को मिलती है। सामान्यतः घरों में तोता, मोर, चिड़िया, हाथी, घोड़ा का चित्रांकन आमफहम है। नौरता के चित्र भी भित्ति पर लिखे जाते हैं। इनमें दानव, दैत्य के चित्र रहते हैं। भाईदूज के चित्र भाईदूज पर अंकित होते हैं।

6. देह चित्रांकन – मानव शरीर को सजाने संवारने की प्राचीन कला है- गोदना! गोदना अधिकतर स्त्रियां अपने विभिन्न अंगों पर गोदवातीं है। यह सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। गोदनों के प्रति बुंदेलखंड की आदिम जन जातियों गौड़ों, सौरों का लगाव अधिक रहा है। यद्यपि ग्रामीण अंचल में सभी जातियों को गोदना के प्रति आकर्षण रहा है। स्त्रियां, बाहों, हाथों, हथेलियों के ऊपरी तल्लों, मस्तक, छाती, पैर की पिंडलयों पर गोदना अंकित करातीं हैं। गोदनों की विषय वस्तु प्रायः निश्चित है। परंपरा से प्राप्त चित्रांकनों में गोदना श्रेष्ठतम नमूना है। बांह पर मुकुट, कलाई के ऊपरी हिस्से पर बिरछा, गमला, गमले पर जोडी में तोता, सिंहासन आदि का अंकन होता है। पहुचा पर घिनौची, बिच्छू उन्नतशीर्ष त्रिकोणात्मक दानों की राशि का चित्रण किया जाता है। कपोल पर बिन्दु, अर्द्धचन्द्राकार आकृति का टीका अंकित किया जाता है। ठुड्डी और कपोल पर भी एक दाना गुदाने की परंपरा है। गुदनों में सूरज, चांद, तारा, चौक, लकड़ी, मोर जोडी, सिंहासन, छत्र, मुरली आदि का अंकन किया जाता है। महावर भी एक प्रकार का चित्रांकन है। इसके अंतर्गत पैर के पंजों पर आरेखन किया जाता है। महावरी के रंग से पंजे पर

चौगिर्दा बेलबूटों वाली रेखायें बनायी जाती हैं। पंजे के ऊपरी हिस्से में अंगुलियों के पास आड़ी रेखाओं से साज-सज्जा की जाती है। मेंहदी भी चित्रकला का ही एक अन्य रूप है जो हथेलियों पर रचाई जाती है। इस आलेखन में अधिकतर रैखिक डिजायनें ही होती हैं। इन रैखिक डिजायनों में ही विभिन्न बारीक आकृतियां उभारी जाती हैं।

7. गृह उपादान चित्रांकन- इन चित्रों के अंतर्गत घरेलू उपकरणों पर लिये जाने वाले चित्रों का विवेचन किया जा सकता है। बांस से बनाये गये पात्रों यथा, सूप दौरिया, टिपारा आदि पर विभिन्न तरह के चित्रांकन किये जाते हैं। इन चित्रों में बेलबूटों वाले सीमाबंध तो रहते ही हैं। मयूर, सुक, घोड़ा, हाथी आदि का भी चित्रण इन पात्रों में किया जाता है। काले रंग से सूप दौरिया को इस तरह पोता जाता है कि इनके बीचों बीच एक चौगान जैसी जगह खाली रह सके। इस मध्यवर्ती क्षेत्र को चित्रावली से सुसज्जित किया जाता है। यह एक ऐसा स्पेस होता है जिसमें दुनियाभर की चीजों को स्थान मिल जाता है। सूरज, चंदा, पेड़, लोमड़ी, सब इसके भीतर समा जाते हैं।

बुंदेली लोक चित्रांकन की विषयवस्तु :-

बुंदेली चित्रांकन में बुंदेली स्वभाव और बुंदेली परिवेश परिलक्षित होता है। प्रकृति के जो अनेक रूप मिलते हैं। उनमें यहां के जंगली वृक्ष, गेंदा, चमेली, चंपा, कनेर के फूल, आम, महुआ के पत्ते, घोड़ा, हाथी, हिरन, मछली, सर्प, चिडिया, सुआ, मोर, पपीहा, कोयल के साथ-साथ तालाब, बावडी, नदी-नाले, चंदा, सूरज, घर, मकान, चूल्हा, पटा, घडा, सूप, घिनौची, वाद्ययंत्र आदि घरेलू वस्तु उपादान एवं संरचनायें प्राप्त होतीं हैं। नारी-पुरुषों के चित्र अक्सर जोड़ों में चित्रित होते हैं। माता-पुत्र, देवर भौजाई, भाई-बहिन, पति-पत्नि के साथ, ऋषि, शिशु आदि के अलावा देव आकृतियों में राम, कृष्ण, शंकर-पर्वती, लक्ष्मी, गणेश, दुर्गा, आदि तथा राक्षसों, दानवों, दैत्यों की शबीहें भी चित्रांकन में स्थान रखतीं हैं। वस्त्राभूषणों का चित्रण भी बुंदेली लोक-जीवन के अनुसार प्राप्त होता है। रेखांकनों में चौक जैसी संरचनायें खूब मिलतीं हैं। इन सबका चित्रांकन संदर्भ सहित होता है। कहीं किसी कथानक को लक्षित करता दृश्यांकन है तो कहीं किसी स्थिति की झलक मात्र है। कहीं-कहीं इन चित्रों में प्रतीकार्थ का भी समावेश है। इन प्रतीकार्थो में घर-गृहस्थी की समृद्धि का भाव निहित होता है।

बुंदेली चित्रकला के प्रतिमान :

बुंदेली लोक चित्र शैली से ही संभवतः बुंदेली कलम का उद्‌भव हुआ है। मध्यकालीन चित्र शैलियों में बुंदेली कलम का महत्वपूर्ण स्थान है। बुंदेली कलम के श्रेष्ठ नमूने ओरछा, दतिया, आदि स्थानों में प्राप्त होते हैं। इस कलम के अंतर्गत चित्रों के सीमाबंधों में फूलों की पंक्तियों का चित्रण हुआ है। मेला, राजदरबार, संगीत की महफिल, कृष्णलीला, रामलीला आदि के साथ नायिकाभेद और रागमाला पर भी बुंदेली कलम ने अपना कमाल दिखाया है। व्यक्ति-चित्रों में स्त्रियों की वेशभूषा में घाघरा, फरिया, ओढनी, अंगिया तथा पुरुष वेषभूषा में अंगा, अंगरखा, धोती, सराई, साफा, की प्रचुरता है। नोकदार जूता और कमर में फेंट का अंकन है। गाल मुंह बड़ी आंख सुतवां नाक, लंबी वेणी हाथों में चूडिया और आभरण धारण करने वाली स्त्रियां ठेठ बुंदेली नाक-नक्श को प्रदर्शित करतीं हैं। भरी-भरी बाहें, प्रथुल जंघायें फूले-फूले गाल, किंचित रसीले और मोटे ओठ स्पष्ट करते है कि बुंदेली क्षेत्र में सौंदर्य का प्रतिमान तन्वगिता नहीं है, यहां स्थूलता महत्वपूर्ण है। लोक चित्र शैली में भी सौंदर्य का यही प्रतिमान है। मोर और तोता जैसे पक्षियों की आकृतियां भी संपुष्ट होतीं हैं। देव-छवियों में भी इस संपुष्टता के दर्शन होते हैं। बुंदेलखंड में काम-काज के लिये खेतों- खलिहानों, पठारों-पहाड़ों में सभी को खटना पडता है, अतः यहां पुष्ट एवं बलिष्ठ शरीर के जरूरत होती है। रेखाओं में वर्तुल रेखांकन और लहरियादार रेखांकन ही बुंदेलीलोक लोकशैली में सर्वाधिक हैं। ये यहां की मानसिकता को व्यक्त करते हैं। गतिशीलता के बीच में अचकचाहट यहां के प्राकृतिक अवरोधों को व्यक्त करती हैं। पुरुषों के चेहरों पर ओज और मूंछ बीरता की भावना को लक्षित करते हैं। स्त्रियों के चेहरों की लुनाई आसक्ति प्रवणता को स्पष्ट करती हैं। बुंदेली लोक चित्र शैली में सूक्ष्मता का चित्रण अधिक नहीं है।

बुंदेली चित्रकला की रंगयोजना :

बुंदेली लोक चित्र शैली में लाल, हरे, पीले, काले और सफेद रंगों की अधिकता है। लाल, पीले और काले रंग अधिकांश चित्रों के निर्माण में अपनी भूमिका रखते हैं। हरा रंग पट-चित्रांकन एवं भित्ति चित्रांकन में प्रयुक्त होता है। भित्ति चित्रांकन में व्यावसायिक चित्रकार पहले आवश्यक रंगों से चित्र की जमीन तैयार करते हैं, फिर रेखांकन द्वारा चित्र रचना का समापन करते हैं। ये रंग स्थानीय आधार पर ही निर्मित किये जाते हैं। गौरा-पत्थर पीस कर सफेद रंग तैयार किया जाता है। हलदी का प्रयोग पीले रंग के लिये होता है। सफेद पीला और लाल चंदन भी इन रंगों के लिये प्रयुक्त होता है। गोबर और कारिख काले रंग के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। लाल रंग के लिये टेसू और घोले के फूलों का इस्तेमाल होता है। इस रंग में या

फिर हलदी में नील मिलाकर हरे रंग का निर्माण कर लिया जाता है। इन रंगों को पक्का करने के लिये खेर की गोंद इनमें मिलायी जाती है। वनस्पतियों और मिट्टी से बने रंगों का प्रयोग ही अधिकांश क्षेत्र में किया जाता है। महावर के लिये महावरी गोलियों का प्रयोग होता है। सूप आदि में चित्रांकन के लिये अलसी के तेल में पुराने कपड़ों की राख को मिलाकर लेपन तैयार किया जाता है। हिरमिची को अलसी के तेल में घोलकर लाल रंग बनाया जाता है। गोदनों के लिये भी प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है। ये रंग तोरई के पत्तों के रस से या अकौवे के दूध में कजली मिलाकर अथवा सर्प का चमडा जलाकर उसकी राख में रमतिला का तेल मिलाकर तैयार किये जाते हैं। गोदना गोदने के लिये लकड़ी की पैनी सुई या बबूल के काटों का इस्तेमाल किया जाता है। रंग भरने के लिये कूंची या ब्रश का उपयोग होता है।

समय के प्रवाह में बुंदेली लोक चित्रशैली शनैः शनैः समाप्त होती जा रही है। नये लोगों में इसे सीखने की ललक नहीं हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भी इसे समाप्त कर रही है।

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे
गौरी शंकर वार्ड, हटा, दमोह (म.प्र.)

गीत

डॉ. एस.बी.एल. पाण्डेय

उनसे संबंध था चिर–मिलन के लिये, यह बिछड़ने की बेला कहाँ आ गई।
उनसे अनुबंध था सर्व हित हम करें,स्वार्थ की भावना यह कहाँ आ गई।।

उनसे संबंध था ....

चाँद तारों से की प्रार्थना रातभर, चाँदनी को यूँ ही बस सजाये रहो।
थोड़ी पलकें झुकी, कुछ उनींदा हुआ, यह अमावस की रात यह कहाँ आ गई।।

उनसे संबंध था ....

हमने रोपे थे, चंपा चमेली गुलाब, अपना उपवन यूँ ही बस मँहकता रहे।
कैसी पछवा चली, किसकी साजिश हुई नागफन की यह फसल यह कहाँ आ गई।।

उनसे संबंध था ....

बात करते रहे हम तो कश्मीर की, वह तो संसद के दरवाजे तक आ गये।
हम घरों में ही अपने सुरक्षित नहीं, कैसी लाचारियों की घड़ी आ गई।।

उनसे संबंध था ....

जिंदा रहने को यूँ तो पड़ी जिंदगी, पर शहादत की रूत रोज आती नहीं।
बाँध लो केशरी पगड़ियाँ सिर पै अब, फिर न कहना कि कैसी घड़ी आ गई।।

उनसे संबंध था ....

हम ऋणी हैं तुम्हारे सदा के लिये, ऐ शहीदों अमर नाम तुम कर गये।
शीश माता का तुमने न झुकने दिया, और विजयमाल माँ के गले आ गई।।

उनसे संबंध था ....

उनसे संबंध था चिर–मिलन के लिये, यह बिछड़ने की बेला कहाँ आ गई।
उनसे अनुबंध था सर्व हित हम करें,स्वार्थ की भावना यह कहाँ आ गई।।

डॉ एस.बी.एल. पाण्डेय
बड़ा बाजार मऊरानीपुर (उ.प्र.)

जागेश्वर धाम बाँदकपुर

- शंकरलाल नामदेव

विश्वविख्यात प्रशांत सिद्धपीठ भारत वर्षान्तर्गत मध्यप्रदेश के मध्य जागेश्वर धाम बाँदकपुर 23° 57° अक्षांश एवं 70.35° देशांश पर स्थित है। यह विशाल एवं प्राचीन मंदिर मध्य रेल्वे की शाखा बीना कटनी लाइन की बाँदकपुर रेल्वे स्टेशन से 2 कि.मी. दूरी पर तथा दमोह जिला मुख्यालय से पूर्व दिशा में 17 कि.मी. की दूरी पर डामर रोड के किनारे स्थित है।

मध्यप्रदेश के इतिहास लेखक पंडित गोरेलाल तिवारी और रायबहादुर हीरालाल साहब ने लिखा है कि त्रेतायुग में भगवान राम की चित्रकूट यात्रा दमोह सागर इलाके से हुई होगी, इसके प्रमाण भी उन्होने दिये है। लगभग एक शदी व्यतीत हुई है कि श्री बाँदकपुरी जागेश्वर रहस्य के रचियता कवि श्री भैरव प्रसाद ने लिखा है- याहि मग हवकर गये दण्डक वन श्री राम। यहाँ शंभू पूजन कियो अरु कीन्हों विश्राम। स्कन्द पुराण के पृष्ठ 96 महेश्वरखंड की कौमारिका खंड-2 में अध्याय 11 में लिखा है- के

तत्र जागेश्वर लिंग कृत्वार्थ विनिवेशितम्।
बाल्यादुपलरुपं तद्वर्षावारिविशुद्धमत्॥

उपर्युक्त संदर्भानुसार स्पष्ट है कि त्रेतायुग में यह तीर्थ स्थान था। कालांतर में यह ध्वस्त हो गया तथा भगवान जागेश्वर नाथ जी ने धर्मोत्थान हेतु पुनः प्रगट होना चाहा और सन् 1711 ई. में मराठा राज्य के दीवान श्री बाला जी राव चांदोरकर पर प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये। कहा जाता है कि बालाजी राव का मुख्यालय दमोह था। श्री बाला जी राव अपने सेवकों के साथ अश्वारुढ होकर यहां आये और वर्तमान इमरती कुण्ड के समीप वट वृक्ष के नीचे आप श्री भगवान पूजन में ध्यान मग्न हो गये।

ध्यान मग्न स्थिति में भगवान जागेश्वर ने आपको दर्शन दिये और कहा कि जहाँ तुम्हार घोडा बंधा है उसके पास उत्खनन कर मुझे भूमि से ऊपर लाने का प्रयत्न करो। ध्यान समाप्त होने पर आप देखते हैं कि घोडा हिनहिना रहा है तथा अपने पैरों से जमीन को खरौंच रहा है। सेवकों से कहा कि देखों घोड़ा क्यों हिनहिना रहा है? जब सेवकों ने देखा तो उनकी समझ में कुछ नहीं आया बाला जी को अपने ध्यानावस्था में शिव जी के द्वारा कहे हुए वचन याद आये तब आपने पूर्ण रुपेण समझा कि घाड़े के टाप के नीचे भगवान स्वयंभू विश्वेश्वर जागेश्वर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बालाजी राव ने सेवकों से उस स्थान की मिट्टी को अलग कराकर सफाई कराई तो एक काले भूरे रंग से प्रस्तर की अण्डाकार मूर्ति निकल आई। कहा जाता है कि बाला जी राव ने उस स्वयंभू शिवलिंग को उठाकर ले जाना चाहा किन्तु 30 फुट तक खुदाई करने पर भी शिव लिंग का कहीं अन्त न पाने पर खुदाई बंद कर दी गई। तब बालाजी ने अपने सेवकों सहित वहीं विश्राम किया। रात्रि में पुनः भगवान शिव जी ने स्वप्न में श्री बालाजी राव से कहा कि मैं यहीं पर रहकर चमत्कार दिखाने के लिए प्रगट हुआ हूँ अतः यहीं पर मंदिर निर्माण कराके मेरा पूजन करो। श्री बालाजी ने फिर इसी स्थान पर मंदिर का निर्माण करवाया तथा उसके पश्चात अन्य मंदिरों का निर्माण क्रमशः होते रहे।

वर्तमान समय में भगवान जागेश्वर नाथ जी के सम्पूर्ण मंदिरों का विस्तार पूर्व से पश्चिम 63 मीटर, उत्तर से दक्षिण 65 मीटर अर्थात 4065 वर्ग मीटर की परिधि में है। मंदिर परिधि में प्रवेश हेतु दक्षिण में हाँथी दरवाजा (प्राचीन मुख्य द्वार) तथा पश्चिम में नवीन गेट सन् 1981 में निर्मित हुआ। उत्तर में भी एक गेट है।

(1) श्री जागेश्वर नाथ जी का मंदिर- श्री जागेश्वर नाथ जी के मंदिर में प्रवेश हेतु पूर्व की ओर मुख्य द्वार है। प्रवेश करने पर भीतर एक बड़ी प्रशांत परिक्रमा है। इस परिक्रमा में उत्तर, दक्षिण, पश्चिम की ओर भी द्वार हैं। विशेष पर्वों पर पूर्व के द्वार से पुरुष तथा उत्तर के द्वार महिलाओं को प्रवेश करने की सुविधा प्रदान की जाती है तथा दक्षिण के द्वार से वर्हिगमन होता है पश्चिम का द्वार जहाँ हॅण्डे प्रसाद लगाये व लौटाये जाते हैं। सदा बंद रहता है। मंदिर गर्भ गृह में पूर्व एवं दक्षिण की ओर दरवाजे हैं। इसी गर्भ गृह के स्वयंभू भगवान जागेश्वर नाथ महादेव का शिवलिंग है। शनैःशनैः वृद्धिकर रहा है। यात्री नर्मदा जल, गंगा जल या इमरति का जल के साथ जटावाला साजा नारियल पुष्प, वेलपत्री, चंदन एवं द्रव्य इच्छानुसार चढोत्तरी करते हैं।

(2) श्री जगत जननी पार्वती जी का मंदिर- भगवान जागेश्वर नाथ जी के सामने पूर्व की ओर पश्चिमाभिमुखी मात जननी पार्वती जी के मंदिर का निर्माण सन् 1772 में हुआ था। जगत जननी

जागेश्वरी जी की लगभग तीन फुट ऊँची प्रतिमा इस अद्भुतढंग से स्थापित की गई है कि दिन के प्रचंड प्रकाश में दर्शनार्थी शिव जी का पूजन करते समय पार्वती जी के दर्शन और पार्वती जी की पूजन करते हुए जागेश्वर नाथ जी के दर्शन एक साथ करते हुए आनंद विभोर हो जाता है। पर्व कालों में भगवती का सिंह वाहनी महारानी पदमासना, महालक्ष्मी, मयूरवाहनी एवं सरस्वती आदि रुपों में श्रृंगार किया जाता है। पार्वती जी के अंदर का मुख्य प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है तथा उत्तर दक्षिण पूर्व की ओर भी प्रवेश द्वार है। पूर्व का द्वार सदैव बंद रहता है। गर्भ मंदिर की बाहरी दीवाल पर विघ्न विनाशक दक्षिण तथा गंगा जी की प्रतिमा उत्तर की ओर है। तथा उत्तरी दीवाल के समीप श्री भुवनेश्वर महादेव जी एवं वृषाभारुढ श्री गौरशंकर जी की स्फटिकपाषाण की मूर्ति है। यात्रियों के लिए गर्भ गृह में प्रवेश वर्जित है।

(3) नंदी एवं धूनी- श्री जागेश्वर महादेव जी एवं जगत जननी पार्वती जी के मंदिरों के बीच मुख्य द्वारों से 21 फुट की दूरी पर बीचोंबीच नन्दी जी की विशाल प्रतिमाएँ स्थापित है। एक पश्चाभिमुखी शंकर जी तथा दूसरी पूर्वाभिमुखी पार्वती जी की ओर मुख किये हुए मठके अंदर नागदेव, सरस्वती, बाराह, गणेशजी, राहू आदि एवं बाहरी दीवालों में केतू, शंकर जी, हनुमान जी, गणेश जी की प्रतिमाएँ हैं। धूनि के मठ के अंदर अर्द्धनारीश्वर भगवान की मूर्ती है।

(4) श्री भैरव मंदिर- श्री भगवती पार्वती जी के मंदिर की उत्तरी सीमा से लगा हुआ श्री भैरव जी का मंदिर जिसका पश्चिम की ओर द्वार है। जिसके भीतर पश्चिमाभिमुख श्री भैरव जी की दो विशाल पाषाण की मूर्तियां हैं। जिनकी प्राणप्रतिष्ठा 1911 में की गई थी। ऊपरी भैरव की प्रतिमा के उत्तरी भाग श्री कृष्ण एक दक्षिण भाग में बलदाऊ जी की प्रतिमाएँ हैं। काले पाषाण द्वारा निर्मित भैरव जी का कुत्ता है। इस मंदिर की परिक्रमा में दक्षिणी दीवाल जो कि पार्वती जी के मंदिर की उत्तरी दीवाल है इसमें आलमारियाँ निर्मित है इस आलमारी में प्रतिवर्ष नवरात्रि में जबारे बोये जाते हैं।

(5) श्री राम मंदिर- पार्वती जी के मंदिर की दक्षिण दीवाल से लगा हुआ श्री राम मंदिर है। पूर्व में यह हनुमान मंदिर था। सन 1958 में राम लक्ष्मण और माता जानकी की स्फटिक पाषाण की पश्चिमाभिमुखी मनोमुग्ध प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा की गयी। समय समय पर यहीं पर अखंड रामायण पाठ होते हैं। प्रत्येक मंगलवार को सुन्दर कांड का पाठ होता है। प्रति वर्ष रामनवमीं को भगवान राम का जन्मोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है।

(6) श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर - श्री राम मंदिर के सम्मुख मौलसिरी वृक्ष के तले उत्तराभिमुखी श्री लक्ष्मीनारायण जी का मंदिर है 20/02/1978 को सत्यनारायण की प्राणप्रतिष्ठा यहां मौलसिरी वृक्ष के नीचे श्री विद्वानों पंडितों द्वारा सत्यनारायण कथा एवं सोलह सोमवार एवं काँवर पूजन कराने की व्यवस्था है।

(7) श्री माता नर्मदा जी का मंदिर- श्री राममंदिर के पश्चिम एवं सत्यनारायण मंदिर के पूर्व दिशा में माता नर्मदा जी के मंदिर का निर्माण हुआ। दिनांक 26 अप्रैल 2004 को प्राणप्रतिष्ठा की गयी। उत्तराभिमुखी माता नर्मदा जी अपने दोनों हांथों में भगवान नर्मदेश्वर शिव लिए हुए है।

(8) श्री राधाकृष्ण मंदिर- श्री महादेव जी मंदिर के दक्षिण में राम मंदिर के सम्मुख हाँथी द्वार के पश्चिम में राधाकृष्ण मंदिर का निर्माण कर दिनांक 30/06/1983 को राधाकृष्ण की प्राणप्रतिष्ठा की गई थी।

(9) श्री माता दुर्गा जी का मंदिर- माता पार्वती जी के उत्तरी द्वार के सम्मुख एवं भैरव जी के पश्चिम में सिंहवाहनी माता दुर्गा जी की प्राणप्रतिष्ठा दिनांक 18/02/2005 को की गई है। मूर्ति के उत्तर में भैरव एवं दक्षिण में हनुमान जी की छोटी मूर्तियाँ भी स्थापित है।

(10) यज्ञ मंडप- सन 1953 में श्री जागेश्वर नाथ जी मंदिर के उत्तर में इमरती के सामने सोलह खम्भों पर आधारित यज्ञमंडप का निर्माण कराया गया।

(11) इमरति कुण्ड- हाँथी दरवाजे से सीधे उत्तर की ओर श्री महादेव जी के मंदिर एवं नंदी मठ के उत्तर में, यज्ञ मंडप के पूर्व में भैरव, जी के मंदिर के पश्चिम में, कार्यालय के दक्षिण में 20 मीटर लम्बी पट्टी सीडी दार एक बाबली है। इसका गर्भ 3/3 मीटर है। यात्री प्रवेश मार्ग 2 मीटर चौड़ा है। इसमें सन् 1262 में सीढ़ियां बनाई गई थी। इमरती नाम की बालिका का डूब कर मर जाने के बाद जीवित हो जोने की घटना का वर्णन जागेश्वर रहस्य के पृष्ठ 12-13 में तथा पं. श्री विश्वनाथ जी दुबे द्वारा रचित श्री जागेश्वर नाथ महादेव के पृष्ठ 27 एवं 35 व 36 में किया गया है।

(12) गौशाला- गौ संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्य से श्री जागेश्वर नाथ मंदिर समिति द्वारा 2006 में गौ शाला की स्थापना की गई। गायों के लिए 20 कमरों का निर्माण किया गया है। चारा भूसा आदि की समुचित व्यवस्था है। श्रृद्धालुओं द्वारा दिये गये गौ, बच्छडों की संख्या 100 से अधिक हो गई है।

(13) संस्कृत वेदांग विद्यालय एवं छात्रावास-

संस्कृत वेदांग विद्यालय का शुभारंभ 1/7/73 में किया गया। इस विद्यालय का रजिस्ट्रेशन 6420 दिनांक 27/7/73 है। वर्तमान समय में इसी विद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण कर श्री कुन्जीलाल डिम्हां प्रधानाचार्य के पद पर कार्यरत हैं। वर्तमान समय में 60 छात्र अध्ययनरत हैं। मा.शि.मं. द्वारा भी 10वीं, 12वीं परीक्षा आयोजित की जाने लगी है।

(14) विवाह संस्कार शाला- गौमुख एवं उद्यान से लगा हुआ पश्चिम द्वार के उत्तर की ओर विवाह संस्कार शाला का निर्माण किया गया है समीपी ही दो टीन सेट बने हुए हैं। जहाँ पर विवाह संस्कार में आये हुये लोगों को भोजन बनाने की सुविधा प्राप्त है।

(15) धर्म शालाएं - सुदूरवर्ती यात्रियों को विश्राम की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु श्री शंकर जी की धर्मशाला, श्री सेठ ब्रजलाल की धर्मशाला, चमारों की धर्मशाला, रजक धर्मशाला, पटैल धर्मशाला श्री सेठ ब्रजलाल की धर्मशाला एवं दिनांक 11/4/05 को पर्यटन विभाग द्वारा एक विशिष्ट धर्मशाला का शिलान्यास कर निर्मित की गई है।

महात्म्म- सिद्धपीठ श्री जागेश्वर नाथ जी महात्म्म के विषय में श्री रामकृष्ण जी पाण्डेय ने कहा है।

रोगी स्वास्थ्यमाप्नोति, किलिष्टः काष्टात् प्रमुच्यते।
बान्ध्या पुत्रमावप्नोति, जागेश्वरं स्वपूजनात् ॥

इस तीर्थ में अमेरिकन, इंग्लैंड, जर्मन, मलाया आदि देशों के यात्रियों के साथ-साथ सम्पूर्ण भारत के यात्री दर्शनार्थ आते हैं। अदिति धगट अमेरिका ने 14/02/02 की यात्रा में कहा है कि इस मंदिर में मेरे परदादा, दादा व पिता आये हैं। हांथा प्रसाद का उल्लेख अमेरिका के एक युवक ने वर्ल्ड हैराल्ड संयुक्त राष्ट्र अमेरिका दिनांक 5/3/54 को लिखा है। भारत में बाँदकपुर का मंदिर जो कि अपने नतीजों को बताता है। यात्रि गण जो कि जागेश्वर नाथ के दर्शनार्थ आते वे अपने हाँथों की गदेलियों के निशान उसकी दीवाल पर यह स्पष्ट करने के लिए छोड़ जाते हैं, कि आया उनकी प्रार्थना का उत्तर दिया गया। मनोकामना पूर्णार्थ सत्यनारायण कथा कांवर पूजन एवं मुंडन संस्कार कराये जाते हैं।

देव पूजन- संस्थान में प्रातः संध्याकालीलन पूजन, रुद्राभिषेक पूजन, सप्तशति पाठ पूजन मध्यान्ह राम भोग, नैवेद्य निवेदन पूजन, सायं संध्या कालीन पूजन, पूर्वरात्रि दैनिक स्त्रोत पाठ, श्री रामायण पाठ, न्यास सभा बैठक दिनांक 13/11/33 द्वारा सूचित समय विभाग चक्र के अनुसार होता है। श्री महादेव जी का पूजन व श्रृंगार सिर्फ हिस्सेदार खानदानी पुजारी ही करते हैं। पुजारी दो वर्ग के हैं (1) स्व. श्री रघुवर प्रसाद (2) स्व. श्री अच्छेलाल (3) स्व. श्री रुद्रप्रसाद (4) स्व. श्री काशीराम परिवार तथा द्वितीय वर्ग में (5) स्व. श्री दलपत (6) स्व. श्री बारेलाल (7) स्व. श्री शिवलाल परिवार के पुजारी पूजन करते हैं।

विशेष पर्व- सम्पूर्ण जगत के अधिनायक भगवान श्री जागेश्वर नाथ जी के इस तीर्थ स्थान में प्रतिवर्ष अनेक उत्सव मनाये जाते हैं। मकर संक्रांति, गणेश चतुर्थी, वसंत पंचमी, महाशिवरात्रि, होलिकोत्सव, रंगपंचमी दोनों नवरात्रि को जवारे, रामनवमीं, हनुमान जयंति, अक्षय तृतीया, वैसाख पूर्णिमा, गंगा दशहरा, रथयात्रा, गुरु पूर्णिमा, नागपंचमी, तुलसीदास जयंति, रक्षाबंधन, कृष्ण जन्मोत्सव, अनन्त चतुर्दशी, विजयादशमी, शरदपूर्णिमा, धन्वन्तरि पूजन, दीपावली, अन्नकूट, कालीदास जयंति, वैकुण्ठ चतुर्दशी को रात्रि में 12 बजे पट खुलते हैं। वैसाख पूर्णिमा को बूडे वावा वनते हैं।

न्यास का इतिहास- स्वयंभू श्री जागेश्वर नाथ मंदिर निर्माण के वाद इनके पूर्वज ही व्यवस्थापक रहे। सन् 1933 ई. में श्री एच.जी. गुरुवर डिस्ट्रिक्ट जज जवलपुर ने अपने निर्णय 6 अक्टूबर 1933 में एक नई व्यवस्था मंदिर के प्रबंध के संबंध में दी। नियमानुसार 12 नवम्बर 1933 को दमोह के विख्यात वयो वृद्ध पं. लक्ष्मी शंकर धगट इस न्यास के प्रथम अध्यक्ष चुने गये। तथा पश्चात ठा. लक्ष्मण सिंह हिण्डोरिया, रणछोड़ शंकर मेहता अध्यक्ष रहे तथा। श्री अतुल कुमार जी श्रीवास्तव वर्तमान समय में अध्यक्ष पद पर कार्य करते हैं। वर्तमान में पं. श्री रामकृपालु पाठक प्रवंधक पद पर कार्यरत हैं।

चमत्कारिक घटनायें- बाँदकपुर पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ही साथ ही जागेश्वर नाथ जी की आराधना से अनेक चमत्कारिक घटनाएँ घटी हैं जैसे इंदिरा नाम की एक बालिका का मृत होकर जीवित होना। 15 जनवरी 1938 दिन सोमवार के मध्यांह बजे श्री महादेव जी के स्वर्ण कलश के ऊपरी भाग से जलधारा का प्रवाहित होना। सन् 1945 में स्टेशन के समीप ही फतेहपुर सीकरी से जबलपुर जाती हुई माल गाड़ी बम बिस्फोट होने पर किसी भी प्रकार की जन हानि न होना। बंगला विजय एक और चमत्कार, नवभारत दिनांक 28/12/1971 को समाचार प्रकाशित हुआ। 17/12/1971 को समुचे पाकिस्तान ने हार स्वीकार करके युद्धवंदी कर घोषणा कर दी रूद्र यज्ञ के यजमान थे इस संस्था के उपाध्यक्ष वेदोवृद्ध स्वाधीनता सेनानर की रामकृपा जी पाण्डेय सागर एवं अध्यक्ष श्री लक्ष्मण सिंह जी की एवं प्रबंधक शास्त्री श्री महेश दत्त जी का यशस्वी सहयोग रहा।

- शंकरलाल नामदेव (से.नि.शि.)
पो. बाँदकपुर जिला-दमोह (म.प्र.)

भौरां जात पराये बागै...

- मणि मुकुल

भारतेन्दु-युग में लोक कवि ईसुरी को इस क्षेत्र में जितनी ख्याति प्राप्त हुई है उतनी अन्य किसी कवि को नहीं। ईसुरी कवि गंगाधर व्यास के समकालीन थे। आपका जन्म मऊरानीपुर (झांसी) से पश्चिम-उत्तर की ओर झांसी सड़क के छटवें मील पर स्थित ग्राम मेंडकी में सं. 1881 में हुआ था। आप श्री भोले अरजरिया के आत्मज थे जो ओरछा से मेंडकी आ बसे थे अरजरिया के तीन पुत्रों में ईसुरी छोटे थे और अधिकतर अपने मामा के यहां रहते थे। लाड़-प्यार से पले होने के कारण ईसुरी स्कूली शिक्षा प्राप्त न कर सके और नौगांव व छतरपुर में कारिंदा का कार्य करने लगे। ईसुरी ने स्वयं एक स्थल पर अपना परिचय देते हुए लिखा है।

तन-तन दोउ जनें गम खाये, करो फैसला चायें।
नांय बगौरा कौ मैडों है, बडे गांव को मायें।
लम्बरदार चतुर्भुज जू के, हम कारिन्दा आयें।
अपनी लांच खायबे कौं बे, नाय की मांय मिलायें।
गड्डी-गाड़े ढडकत नइयां, ओंगन बिना लगायें।

ईसुरी की कवित्त शक्ति से प्रभावित होकर छतरपुर नरेश ने इन्हें राजाश्रय देना चाहा था। किन्तु ईसुरी ने उसे स्वीकार नहीं किया। महान संघर्षो के बीच पले-पुसे लोक-कवि ईसुरी आशु कवि भी थे। उदर पोषण के लिये दर-दर की ठोकरें खाना पड़ी। कभी बगौरा, कभी धौर्रा और कभी धनवार के रहीसों की देहली पर माथा झुकाना पड़ा। जीवन में आघातों और दुर्घटनाओं का क्रम चलता ही रहा। आखिर ईसुरी को जन्म स्थान मेंडकी छोडकर ससुराल डेरा डालना पड़ा। लेशमात्र परिवर्तन के, समय गुजरता गया और काल की गति ने ईसुरी से पत्नी, बेटी गुरन, माता-पिता भी छीन लिये। इतना सबकुछ होने के बाद भी वह जीवंत महापुरुष सारे जंजालों से ऊपर उठकर काव्य-धारा प्रवाहित करता रहा।

ईसुरी के गीत चौकड़याऊ फाग कहलाते हैं और मुख्यतः प्रेम व श्रृंगार को अभिव्यक्ति देते हैं। ईसुरी की श्रृंगारमयी फागों का प्रेरणा स्त्रोत रजउ को कहा जाता है। उनकी फागों में रजउ का बार-बार उल्लेख मिलने के कारण विद्वान, रजउ को कवि की प्रेमिका घोषित करने से नहीं हिचकते। किन्तु स्वयं ईसुरी ने लिखा है :-

नईयां रजउ काउ के घर में, बिरथा काउ न भरमें।
सबमें है और सबसे प्यारी, सब ठोरन में भर में।
को कय अलख-खलक की बातें, लखी न जाय नजर में।
ईसुरी गिरधर रयं राधे में, राधा रयं गिरधर में।

एक अन्य फाग में भी ईसुर ने कहा है :-

देखी रजउ काउनें नइयां, कौन बरन तन मुइयां।
कां तो उनकी रहस-रास है, कां दये जनम गुसईयां।
पैलउ भेंट हमई सें ना भई, सई कृपा हम पईयां
ईसुर हमने रजउ की फाग, करदई मुलकन मइयां।

ईसुरी के कहने और लिखने से यह बात उजागर नहीं होती कि रजउ से उनका प्रेम नहीं था या रजउ उनकी कल्पना रुप प्रेमिका थीं। उपरोक्त पंक्तियों को देखें तो समझ आता है कि राधा थीं तभी तो गिरधर से प्रेम था। डॉ. दुर्गेश दीक्षित ने लोक कवि ईसुरी का आध्यात्मिक चिंतन, आलेख में लिखा है कि ग्राम धौर्रा के मुसाहिबजू की रुपवती पुत्री का नाम रजउ था। मुसाहिबजू के पिछवाड़े में ईसुरी का निवास था। दोनों घरों के बीच में एक छोटी सी खिड़की थी। उसी खिड़की में होकर उनका प्रेमालाप और रुप दर्शन का क्रम चलता रहा। कहा जाता है कि खिड़की, घर और बाहर की जिन्दगी के बीच सेतु का काम करती है। घरों में खिड़कियों की अनिवार्यता का मैं भी पक्षधर रहा हूँ। घरों में खिड़कियाँ किसी से कुछ लेती भली न हों पर देती अवश्य रहती हैं। तो रूप दर्शन और प्रेमालाप अधिक बढ़ जाने पर मुसाहिबजू ने ईसुरी को नीम की डाल पर टंगवाकर पिटाई लगवाई थी। उनकी एक चौकड़िया में इस घटना का स्पष्ट संकेत भी मिलता है:

जा भई दशा लगन के मारें, रजउ तुम्हारे द्वारें।
जिनपै फूल छड़ी न लागी, तिनें घली तलवारें।
हम तौ टंगे नीम की डारन, रजुवा करें बहारें।
ठाढ़ी हतीं टिकी चौखट से, अब भई ओट किबारें।
का कर सकत अकेले ईसुर, सबरौ गांव उतारें।

रजउ तो उनकी प्रेमिका थी, इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है किन्तु उनकी रजउ लौकिक होते हुये भी अलौकिक हो गई। जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा मिलकर एकाकार हो जाते हैं कुछ इसी प्रकार की स्थिति ईसुरी और रजउ की हो गई थी।

खिड़की से ईसुरी ने रजउ को देखा होगा तभी तो कहा है:-

देखो रजउ खां पटिया पारें, सिर सबहार उघारें।
भौतिक मांग भरी सेंदुर सौं, बेंदा लेता बहारें।

श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का ईसुरी की फागों में सुनियोजित स्वरुप देखने को मिलता है। इस लोक कवि ने श्रृंगार अनुभूतियों के जो रुप चित्र अंकित किये हैं वे अपनी मार्मिकता के कारण बेजोड़ हैं, ईसुरी की लगन का न ओर होता है न छोर :-

ऐसी का काऊ की गोरी जैसी प्यारी मोरी,
दाड़िम दसन सुआ समनासा सब उपमा हैं थोरी।
ईसुर चाउत इनखां ऐसे जैसे चंद चकोरी।

इसी प्रकार रजउ का स्वप्न भी ईसुर ने अपनी चौकड़याऊ फाग में ज्यों का त्यों उतार दिया है :-

सपनन दिखा परे मोय सैंया, सुनो पडोसन गुइयां।
आपन आय बगल में ठाडे, झपट परी मैं पइयां।
उनके दोऊदृग भर आये, मोरी भरीं डबैयां
ईसुर आंख दगा में खुल गई, हतो उते कोउ नइयां।

ईसुरी की रचना धार्मिता जनवादी है। शब्दों का वागजाल नहीं। तुलसी के बाद हिन्दी में इतना सहज, सरल और मन को स्पर्श करने वाला कवि ईसुरी ही है जिसे आम आदमी की पीडा की सीधी अनुभूति है। ईसुरी अपने समय के समयदृष्टा थे। उनकी पैनी दृष्टि से भला कोई चीज ओझल हो सकती है ? मानवीय संवेदनाओं के कवि होने के नाते, इनकी फागों में मानवीय जीवन की गहन और व्यापक अनुभूतियों का समावेश हुआ है। गरीबी, पर्यावरण प्रदूषण की गहन समस्या, नशीले पदार्थो का सेवन एवं धुम्रपान का प्रचलन, परिवार को नियोजित रखना, इसकी चिंता उस समय ईसुरी को रही। लोक कवि लोक का चितेरा होता है उसे संसार की असारता का अपने आप भान हो जाता है। आकाशवाणी और दूरदर्शन को उद्घोष- पति-पत्नी का सच्चा, प्यार, एड्स से बचने का आधार, पर नारी साहचर्य एड्स का एक प्रमुख कारण है जिसे ईसुरी ने पूर्व से ही सचेत कर रखा था :

भौंरा जात पराये बागै, तनक लाज न लागै।
घर की कली कौन कम फूली, काये न लेत परागै।
जब चाओ रस लेव मौज से, छिन-छिन कवि अनुरागै।
जूंठी-जांठी पातर ईसुर, भावै कूकर, कागै।

कला पक्ष की दृष्टि से भी उनके काव्य में अलंकारों का सौष्ठव देखा जा सकता है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अनुप्रास इत्यादि का प्रयोग अत्यंत कुशलता के साथ किया है। ईसुरी की लोकप्रियता के संबंध में यहां तक कहा जाता है कि :-

रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलिकाल में, कहीं ईसुरी फाग।

इसमें संदेह नहीं कि ईसुरी की फागों में अपूर्व माधुर्य और लालित्य है। बुन्देलखंडी ग्राम्य जीवन को उन्होंने प्रवाहशील वाणी में अभिव्यक्ति दी है। लोक-साहित्य की भाषा में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। बसन्त आगमन पर उनकी एक फाग देखिये :

अब रित आई बसंत बहारन, पात फूल फल डारन।
हानन हछ बहारन पारन, धाम धवल जल धारन।
कपटी कुटिल कंदरन धाई, गह बैराग बिगारन।
चाहत हती प्रीत प्यारे की, हा-हा करत हजारन।
जिनके कंत अंत घर से हैं, तिने देत दुख दारुन।
ईसुर मौर-मौर के ऊपर, लवो मौर गुंजारन।

ईसुर में भक्ति, धर्म, भावना का अभाव न था। राम कृष्ण संबंधी उनकी फागें, देवी-देवताओं की प्रार्थना, शारीरिक नश्वरता से आलौकिक-साधना और सतकर्मों की ओर प्रेरित करने को भाव इस बात का प्रमाण है। कभी वे शारदा की प्रार्थना यह कह कर करते हैं कि :-

मोरी खबर शारदा लइये, कंठ बिराजी रइये।

और कभी संसार की नश्वरता की ओर ध्यान आकर्षित कर धर्म-साधना की प्रेरणा देते हैं।

जो संसार ओस को बूंदा, तन को कौन भरोसो का

ईसुरी की बड़ी इच्छा थी कि उनका दाह- संस्कार बगौरा में ही किया जाये, भले ही वे गंगा किनारे मरें। अपनी अस्वस्थता का जिक्र भी एकाधिक फागों में किया है :

बिगरी तबियत देत दिखाई, आज नींद न आई।
बिन रघुनाथ प्राण की पीरा, मिटनी नइं मिटाई।
धीरे पंडा रोन लगे जब, हमें न आई राई।
रामनगर में परे ईसुरी, कर रये बैद दवाई।

इसी प्रकार :-

यारो इतना जस लै लीजो, चिता अंत न कीजो।
गंगा जू लौं मरे ईसुरी, दाग बगौरा दीजो।

ईसुरी की यह आकांक्षा सं. 1966 की अगहन सुदी सप्तमी को पूरी हुई। उनके शिष्य धीरे पंडा ने उनकी मृत्यु का उल्लेख एक फाग में किया है। जिससे इस तिथि की पुष्टि होती है। उन्होने उनकी मृत्यु किस प्रकार बिना किसी कष्ट के हुई, उसका भी उल्लेख किया है -

ईसुर, तज के गये सरीरा, हती न एकऊ पीरा।
होतन भोर प्यास लग आई, पिऔ गरम कर नीरा।

अगहन सुदी सातें थी उदना, बार सनीचर सीरा।
संवत उन्नीस सौ छियासठ, उड़ गऔ मुलक ममीरा।

आज से लगभग 85 वर्ष पूर्व फागों के उस बेमिसाल राजा रजउ की मृत्यु हुई थी। फागों के अवसर पर उनका स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है।

– मणि मुकुल

हमें तो हीरो होण्डा चाने

प्रेमशंकर ताम्रकार "घायल"

सरगे भाव चढ़े लरकन के, ऐंचक होंय चाय ताने।
हमें तो हीरो होण्डा चाने।।
लरका मोरों बड़ो सूदरो, मसत नहीं है लरम दूबरो।
सात गड़ा रोटी सटकावे, दार भात टाठी भर खावे।।
काम कछू नई जाने ।

हमें तो हीरो ....

लरका मोरो पढ़ो आठवीं, तीन साल भओ फेल पाँचवी।
मेट्रिक तेरा दार पढ़ो हैं, मास्टर से नित खूब लड़ो है।।
लरका की का काने।

हमें तो हीरो..................

महँगाई तो सरगे चढ़ गई, कीमत लरका की बढ़ गई।
तुमसे रेट पुरानो ले रये, तोऊ कीमत तुम जादा कै रये।।
काये भैया, फोकटई में चाने।

हमें तो हीरो..................

लरका बीड़ी तमाखू ने जाने, गाँठ को पान कबऊँ ने खावे।
पौआ खों ने हाथ लगावे, गटगट पूरी बोतल सटकावे।।
जौहरी ही हीरा पहचाने।

हमें तो हीरो..................

उमर पाँच कम दो है बीसी, पुचके गाल लगी बत्तीसी।
देखत में "घायल" अलवेलों, स्टाक कम तुम जल्दी ले लो।।
पाछूँ पर है पछताने।।

हमें तो हीरो..................

– प्रेमशंकर ताम्रकार "घायल"
सुभाष वार्ड–हटा

भैया स्वस्थ रहने और बुंदेलखंड की शान बढ़ाने

- सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल

भैया सबको जैराम जी की,

नगर में बुंदेली मेला भरो हैं, उमे एक पत्रिका निकल रई हैं। पत्रिका किताब जा में बुंदेली से संबंधित जानकारी दई जा रई हैं। हम भी बुंदेलखंड की संस्कृति में आई कछु विकृतियों (बुराइयों) पर लिख रये हैं। बात जा हैं हम तुम मिलत हैं तो राम राम करत हैं। सब से जैराम जी की करत हैं। राम को नाम लेवे से मन में एक अच्छी भावना पैदा होत हैं। मन के मैल धुल जात हैं। मन के बुरे विचार मिट जाते हैं। राम राम कहत हैं तो अच्छो लगत हैं। जब बीड़ी जलाके देत हैं धुँआ उडात हैं तो ठीक नई रहत, भैया इ से पर्यावरण विषाक्त होत हैं धुंआ फेफडों में जात हैं तो टी.बी. (क्षयरोग) हो जात हैं अपने क्षेत्र में टी.बी. के मरीज बढ़ रये हैं अतः सबसे कैवो हैं, भैया बीड़ी नई पीने। तम्बाकू नहीं खाने। जा आज के बड़े-बड़े डॉक्टर भी कै रये हैं। बीड़ी में जोन खर्चा होत हैं, उको संग्रह करे तो गरीब बीड़ी पीने वाले भी मालामाल हो सकत हैं जो पैसा बीड़ी में खर्चा होत हैं उ पैसा अगर गुल्लक में रखत जाये तो जो मजदूर पैदल जात हैं वे साल दो साल में साईकिल ले सकत हैं।

भैया, एक बा और हैं बुंदेलखंड में पीवे को चलन बढ़ रयो हैं जो ठीक नईयाँ। कलई की बात हैं गाँव में एक आदमी अपनी गैया छोड़वे आओ तो वो गैया नई छोड़ पा रयो तो, गैया जैसई झटका मारतती तो वे जमीन में लोट जातते 3-4 बेरे गिरे। सबरे लड़का वारे उन्हें देख के हँसन लगे। बोले पीवे से सब ऐसेई बर्बाद हो जात हैं। अतः पीवो छोडके भैया लोंग सुपारी खाव तो अच्छो हैं। आजकल जो गुटका चलन लगो है ई को भी अपन सब को छोड़ने है भैया। जब अपने अच्छे हुइयें जबई तो बुंदेलखंड की शान बढें।

भैया, सब सुखी स्वस्थ और तन्दुरुस्त रैहें। अगर बीमार से खासत से और दुबले पतले घूम हैं तो बुंदेलखंड को लोक कमजोरों को मुलक जान हें। अतः अच्छे हट्टे-कट्टे बनने भैया रोज योग, व्यायाम करने, जब से अपने पाण्डे मास्साब ने योग व्यायाम शुरु करो हैं कई पढे लिखे लोग योग करवे जात हैं, अनपढ़ भैया भले योग न करें।

वे तो हार खेत में मेहनत कर लेत हैं। लेकिन मन को योग जरूर करने। हानि लाभ सब प्रभु की माया हैं अतः हड़बड़ाने नईयाँ, एक-दूसरे से ईर्ष्या, द्वेष, जलन नई रखने, अपने बुंदेलखंड में कई लडाई झगडा, दूसरे से बदला लेने और नीचो दिखावे के कारण भये हैं। अतः अपन को शिक्षा लने कोऊसे बदला नई लेने कोऊ को नीचो नई दिखाने, सबसे जैराम जी करने, ऐई में अपनी बुंदेली शान हैं। जोई सबसे बडो योग हैं। जब मन स्वस्थ रये तो तन भी तन्दुरुस्त बन हैं। इन सब बातों में जो अच्छो लगे सो मानइयो भैया। बुंदेली मेला में आप सबई भैया बहनों से जै राम जी की।

पानी बचाओ भैया- जात जात एक और बात याद आ गई अपने क्षेत्र में पानी की किल्लत हो रई हैं, दिनों दिन जल स्तर गिर रयो हैं, पानी समय से नई बरसत हैं, जो बरसत हैं उ कम रहत हैं। जो गिरत हैं सो बह जात हैं। अतः अपने किसान भाई खेतों में पानी की खेती करे पानी बचावे तो धन धान्य से भरपूर रैहो। ई बात पर विचार करत भये अपने खेत को पानी बाहर न बह पावे ई पे जरूर ध्यान देने हैं।

लड़का लड़की को एक समान जानो - भैया बुंदेलखंड में गन्ता होत हैं तो लड़का के जनम पर तो खूब खुशी मनाई जात हैं, लड़की जनम ले तो लोग सिकुड से जात हैं, कई जो कहत हैं लड़की भई का खुशी ? ऐसी बात नहीं हैं, लड़की न हुई हैं तो अपने मुन्ना को बहु कहाँ से लाओगे ? लड़का लड़की को एक समान जानो, लड़का को पढाओ, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, इंदिरा जैसो योग्य बनाओं। जोई गृहस्थ जीवन को सबसे बडो तप है।

- सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल

नन्नी किस्सा (बुन्देली लघुकथा)

ऐंसें ऐंसें कहें कैसें, कहत में निकरे प्रान, जैसई उदई, उसई भान, नें इनखें चुंदई, ने उनखें कान, एक दिना उदई से केन लगे भान, बड्डे हमाए परबब्बा इत्ते बडे निसानची हते, इत्ते बडे निसानची हते के, उड़त चिरैया की छाँयरी, पानी में देखके, बन्दूक घालत ते तो, ऊ पर उड़त चिरैया नेचे गिर के मर जाततीं।

उदई बोले- आर, ई में कौन बड़ी बात है, इत्तान ऊपर से जब चिरैया गिर हैं, बिचारी बा तो उँसई मर जै है।

- अजीत श्रीवास्तव, एडवोकेट, दमोह

बुन्देल खंड का नलनगर (रनेह)

- पंडित ज्ञानी महिराज

बुंदेलखंड में प्राचीन गौंड राज्य वंश के संस्थापक संग्राम शाह के सेनापति हट्टेशाह द्वारा बसाये गये हटा नगर से १४ किमी की दूरी पर पूर्व दिशा में बसा ग्राम रनेह प्राचीन नलनगर है। नलचंपू एवं अन्य प्रमाणित ग्रंथानुसार ब्रम्हावर्त (बिठूर)के शासन वीरसेन के पुत्र नल ने इस स्थान पर नगर बसाया था। गाथानुसार महाभारतकालीन पांसाविसारद राजकुमार नल शिकार खेलने हेतु (किसी खोज के लिए) इस क्षेत्र में आये थे और उसी समय विदर्भ देश के राजा भीमसेन भी अपनी पुत्री दमयंती के साथ इसी क्षेत्र में आये थे वीरसेन का पड़ाव वहां था, जहां आज जिला मुख्यालय दमोह नगर है। संयोगवश एक दिन राजकुमार नल जागेशवर ज्योर्तिलिंग (बांदकपुर धाम) के दर्शन करने हेतु गये और उसी समय राजकुमार दयमंती भी जागेशवर शिव के दर्शन हेतु आयीं। उसी दिन बैसाख माह की शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया थी (यह ज्योर्तिलिंग स्वयंभू है) नल दयमंती के निर्मल प्रेम कोदेखकर महाराजा वीर सेन एवं महाराजा भीमसेन ने दोनों के विवाह करने का विचार विमर्श किया। ईश्वर की प्रेरणा से जागेशवर ज्योर्तिलिंग के समक्ष उसी दिन उनका गंधर्व विवाह संपन्न हो गया। महाराजा बनने पर नल ने अपने नाम पर नलनगर एवं दयमंती के नाम पर दयमंती नगर बसाया गाथा अनुसार जिस समय महाराजा नल श्रापग्रस्त हुये और वे अपनी रानी दमयंती के साथ राज्य छोड़कर चले गये तो श्राप के प्रभाव से राज्य में सूखा पड़ने लगा लगातार १२ वर्षो तक जलवृष्टि नहीं हुई। अकाल को देखकर नल नगर एवं दमयंती नगर के प्रजाजनों से संगठन बनाकर जलाशय बनाना शुरु कर दिये। आज वर्तमान में जो तालाबों के नाम नल नगर (ग्राम रनेह में है) उसी उसी तालाबों के नाम दमयंती नगर दमोह में है। जैसे कचोरा फुटेरा पुरैना बेलाताल मातनताल ठाकुर ताल दुबे ताल मालाताल लम्सरताल सगराताल गडुआताल नादियाताल गड़रनू तलैया धुबनू तलैया सुनकरयाउ नाउतलैया खाम तलैया हाथीढोल इत्यादि ग्राम रनेह के तालाबों में सभी प्रकार के कमल खिलते हैं। प्रत्येक तालाबों के घाट बडे बडे पत्थरों से बंधे हैं। प्रत्येक तालाब पर पंचमुखी शिव स्थापित हैं।

कचौरा तालाब की प्रमाणिकता

प्रमाणित जनश्रुति के अनुसार नलनगर में एक कचौरा एक बहुत धनी था। जब पानी का काल पड़ा तो कचेरे ने ६४ एकड क्षेत्र में तालाब खुदवाया। तालाब सतह से १६हाथ गहरा हो गया परंतु न तो पानी निकला और न ही बरसात का पानी रुका परेशान कचेरे के पूंछने पर ज्योतिपियों ने बताया यदि तालाब के बीच में कांच की मढिया बनवाकर अपने बडे लड़के बहू से उसमें भगवान शिव की स्थापना कराई जाये तो पानी निकल सकता है, स्थापित होते ही तालाब एकाएक पानी से भर गया लडके बहू की जल समाधि देखकर कचेरा ने भी शिव का धयान करके समाधि ले ली। कचेरा का मकान उस समय तालाब के पश्चिमी किनारे पर था। आज उसका मकान खंडहर के रुप में है। मकान के अवशेष पूर्ण रुप से आज भी प्राप्त होते हैं। आज भी उस जगह से कोई भी एक कंकण भी उठा कर नहीं ला सकता। यदि कोई ले भी जाता है, तो उसके प्रकोप से उसे वह वस्तु वहीं परवश में रखनी पड़ती है। ऐसे बहुत से प्रमाण अभी भी मिलते रहतें हैं।

मातनताल की बड़ी देवी की बडी महिमा

ग्राम रनेह के बाहर पूर्व दिशा में मातन ताल पर बडी देवी की मढ़िया है जिसमें अतिप्रचीन मूर्तियां स्थापित हैं मढ़िया के मध्य में एक अतिप्राचीन अंकोल जाति का वृक्ष लगा था। सभी मूर्ति जिसके नीचे स्थापित थीं। अभी कुछ दिन पहले एक पुजारी ने वह वृक्ष कटवा दिया वृक्ष के काटने का समाचार सुनकर समस्त क्षेत्रवासियों को बहुत दुख हुआ क्योंकि वह वृक्ष सभी की असीम श्रद्धा का केन्द्र था। जब कोई असाध्य रोग ग्रसित हो जाता था तो वह व्यक्ति मां के समक्ष पहुंचकर उस वृक्ष के पत्ते चबा लेता था। पत्तों के सेवन करते ही रोगी असाध्य बीमारी से तत्काल छुटकारा पा जाता था। ग्रामवासी एवं क्षेत्रवासी चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमीं को जवारे ले जाकर मढ़िया में रोये गिड़गिड़ाये भक्तों की प्रार्थना पर प्रसन्न होकर मां ने प्रकट होकर एक पंडा के मुंह से कहा कि तुम लोग चिंता मत करो मेरी कला देखना। आश्चर्य, उसी वर्ष मढ़िया में पच्चीसों वर्ष उसी प्रजाति के अपने आप उत्पन्न हो गये। आज मढिया की सुंदरता और अधिक बढ़ गई है। दुखी लोग उसी प्रकार दुख का निवारण करने के लिए वृक्ष के पत्तों का सेवन करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते हैं।

सगरा तालाब के गणेश एवं पिप्लेश्वर

सगराताल पर अतिप्राचीन गणेश प्रतिमा है। और पीपल के वृक्ष में प्राचीन शिव लिंग के दर्शन हो रहें है। नगर के मध्य में

भगवान श्री कौशलाधीश, माँ चण्डी माँ आसमानी, माँ सिंहवाहिनी, माँ हिंगलाज की अतिप्राचीन स्थापना है। ये सभी शक्तियाँ जाग्रत अवस्था में हैं। इनके अनेकों चमत्कार जन जन के समक्ष प्रकट होते रहते हैं।

ग्राम रनेह के चारों तरफ अतिप्राचीन बाग हैं बागों के मध्य में बाउडी एवं चबूतरे पर पंचमुखी शिव स्थापित हैं। बाग जैसे बंगला बगीचा, गुलाब वाटिका, अर्जुन बाग, इमला बाग, रससाल बाग एवं अश्वस्थ बाग प्रसिद्ध है।

गजेटियर के अनुसार १२ वीं शताब्दी में बडा भूकंप आया था, जिसके प्रभाव से प्राचीन नल नगर के भवन ध्वस्त हो गये, परंतु उन भवनों के अवशेष आज भी पूर्ण रुप से प्राप्त होतें हैं, ग्राम के मध्य एवं आसपास खोदते समय पत्थर के विशाल खंबे, विशाल चौकियां, पाषाण द्वार, वेदिकाएं एवं तहखाने सुरंग बहुतायत में पायीं जाती हैं। पांच रंग के पत्थर चित्रकला सहित यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। बरबश ही विचार करना पड़ता है कि ऐसे पत्थरों की खदाने ग्राम के दूर-दूर तक नहीं हैं। फिर ऐसे विशाल पत्थर कहां से कैसे आये होंगे। ग्राम रनेह में बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं हिन्दू धर्म की विशाल प्रतिमाएं बिखरी पड़ी हैं, जिनका कुछ संग्रह पुलिस स्टेशन रनेह में हो गया है और अगनित मूर्तियां चोरी चली गयी हैं।

दुर्लभ प्राचीन मूर्तियों की प्राप्ती

नटराज-शिव, जिस समय मुगल शासक मूर्तियों को तुड़वा रहे थे, उस समय नल नगर (रनेह) के धर्म प्रेमियों ने मूर्तियों को तालाबों में छिपा दिया था, अभी कुछ वर्ष पहले गड़रनू तलैया की मिट्टी खोदते समय ग्राम रनेह के वार्ड नं. 1, के निवासी पं. श्री शंकर लाल कुलमयां को नटराज शिव की अति प्राचीन पाषण प्रतिमा प्राप्त हुई है। उन्होंने उस प्रतिमा को घर में मंदिर बनवाकर स्थापित करवा लिया है। यह प्रतिमा अखंडित है, अनुमानित गुप्त कालीन है। ऐसे अनेकों मूर्तियां तालाबों में छिपी होगी, यह खोजने का विषय है।

भगवान नीलेश्वर

प्राचीन नल नगर का एक मुहल्ला धरपुरा जो वर्तमान नल नगर (रनेह) से लगा हुआ, ईशान कोण में स्थित है। एक बार चरवाहों को पास में बहने वाली छोटी सी नदी जिसका अपभ्रंश नाम (लेड़ी है) में विशाल शिवलिंग के दर्शन हुए, शिवलिंग को लाने के लिए बहुत से ग्राम वालों ने काफी प्रयास किया, लेकिन सभी असफल रहे। भगवान शिव ने एक ब्राह्मण से स्वप्न में कहा कि हम धरमपुरा जाना चाहते हैं, धरमपुरा के लोग कीर्तन लेकर वहां गये और बहुवजनीय भगवान नीलेश्वर को सहज में ही उठाकर ले आये। वे आज भी धरमपुरा में पीपल के नीचे बिराजमान है।

ग्राम रनेह के गोल बाजार का मठ

ग्राम रनेह के गोल बाजार में बौद्ध कालीन प्राचीन मठ है, जिसके दो खंड ऊपर हैं और नीचे भी खंडों के आभास हैं, ऐसे और भी बहुत से पुराने अवशेष ग्राम रनेह में सुरक्षित हैं, जिनमें परसादिया तालाब का राज्य द्वार उड़नू तालाब की बाउली, कचौरा तालाब का चौपरा, बाला मंदिर की छतरी, चौकी इत्यादि।

ग्राम रनेह पुरातात्विक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण स्थल है, परंतु न जाने सरकार की दृष्टि इस स्थल पर क्यों नहीं हैं। विचार करें कि ऐसे छोटे से ग्राम में 52 कुंओं एवं 84 तालाबों के होने का क्या कारण हैं और यह भी विचार करें कि भारत वर्ष में इतने छोटे से ग्राम में इतने कुंओं और तालाब कहां कहां है।

नल नगर ग्राम रनेह पर माँ वीणा वादिनी की असीम कृपा है, इस नगर की दो लोकोक्तियां जन-जन में प्रसिद्ध हैं।

1. बावन कुंआँ चौरासी ताल, तऔ रनेह में पानी को काल।
2. पढ़े-लिखें नहीं हैं, पर हैं रनेह के।

सचमुच में ग्राम रनेह में काव्य कला, संगीत कला, चित्रकला, मूर्ति कला, युद्ध कला एवं अन्य कलाओं का अद्भुत सामांजस्य हैं। यह ईश्वर की विशेष कृपा हैं।

-पं. ज्ञानी महिराज, ग्राम-रनेह, हटा, दमोह (म.प्र.)

देश भक्ति गीत

कालका प्रसाद उर्फ कलू सेन, ग्राम कांटी, हटा, दमोह (म.प्र.)

अपने वीर बुंदेलखंड को जगजाहर हैं नाम रंजन भौरा।।
झाँसी आई लक्ष्मी बाई,
छत्रसाल तलवार चलाई,
आल्हा-ऊदल महुवे पाई,
अंग्रेजन को दुर्गावती ने कर दओ काम तमाम मन रंजन भौरा।।
चित्रकूट प्रभु राम जू आये,
खजुराहो मंदिर मन भाये,
बांदक पुर जागेश्वर छाये,
कई जन्मों के पाप दूर हो कुंडेश्वर के धाम मन रंजन भौरा।।
भटा हटा को है जग जाहर,
कटनी में चूना को सागर,
नंदरई के सकला बिके बाहर,
कांटी में कलू रैखें प्यारे करें हरि गुनगान मन रंजन भौरा।।

बुंदल बुंदेली संस्कृति और संस्कार

- डॉ. रमेश चंद्र खरे, दमोह

महाराज हट्टे शाह की ऐतिहासिक नगरी हटा अपने पार्श्वांचल में ग्राम सकौर के लोक काव्य आल्हा गायक जन कवि जगनिक का शौर्य और ग्राम स्नेह (प्राचीन नरेह) के राजा नल एवं दमोह की रानी दमयंती की प्रणय-परिणय गाथा का लालित्य संजोये है। यही दो उपादान बुंदेलखंड की बोली बुंदेली में प्रारंभ से ही रच बस गये। बुंदेली माटी की सौंधी गंध, इस विध्या की घाटी में दसवीं शताब्दी में परमार वंश के राजा गुंज और भोज काल से ही यहाँ की संस्कृति को सुवासित करती रहीं। बुंदेलखंड का पुराकालीन संदर्भ दशार्ण और चेदि जनपदों से भी जुड़ता है। विंध्य वासिनी देवी के समक्ष अपना स्वतंत्र सत्ता के लिये साधना करने वाले हेमकर्ण को ही यहाँ का आदि संस्कृति पुरुष माना जाता है। कालांतर में पन्ना नरेश छत्रशाल की राज्य सीमा ही बुंदेलखंड की सीमा मानी गयी। (डॉ. ग्रियर्सन)।

इत यमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस, छत्रसाल से लड़न की, रही न काहू हौंस।

पर महौवा को शिला लेखानुसार चंदेल राजा जयशक्ति (जैज्जक) के नाम पर ही जैजाक- भुक्ति नाम शेष- जुझौत आगे चलकर बुंदेलखंड कहलाया।

ऐसे जीवंत प्रदेश का शौर्य और श्रृंगार हमेशा यहाँ के समाज और संस्कृति को स्पंदित किये रहा। डॉ. बलभद्र तिवारी के अनुसार - मानव जीवन की दृश्यमान एवं भासमान क्रियाओं को संयोजित एवं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने वाली अबाध चेतना ही किसी जाति की संस्कृति में परिगणित हो जाती है। समाज, जाति, देश को आत्मवत् सर्व भुतेषु की तरह संस्कृति का अमृतमय आलोक जीवन को प्रकाशित, स्पंदित और गतिशील बनाता है। यहाँ से सभ्यता की प्राचीर पार्थिव उपकरणों से निर्मित होकर एक सांस्कृतिक विरासत का नाम पाती है। इसके अंतर्गत उसकी आंचलिका को समेटे साहित्य, धर्म, दर्शन, कला, भाषा सभी उसे संवारते हैं। यहाँ की धार्मिक चेतना की उदारता हिन्दु संस्कृति से ही अनुप्राणित रही है। शिव और शक्ति की उपासना यहाँ का प्रेरणा स्रोत रहा। जिसके केन्द्र यहाँ के शताधिक मंदिर थे। चंदेलकाल में इन पर तंत्रवादी महायान बौद्ध संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा जो खजुराहो में प्रतिबिंबित है। पंचायतन शैली में निर्मित ये खजुराहो मंदिर अपने साथ मूर्ति कला की एक अमूल्य निधि भी समेटे है। वास्तुकला के केन्द्र महोवा, ग्वालियर, ओरछा, दतिया, टीकमगढ और पन्ना में ही नहीं दमोह के नोहलेश्वर मंदिर (नोहटा) में भी अवशेष रूप में विद्यमान हैं। ये अब पुरातत्व की धरोहर है। कलचुरी राजा विजय सिंह देव की गूजर रानी नोहला के ईश्वर-नोहलेश्वर का शिव मंदिर दो प्रदेशों की कला समन्वय का स्मारक है। यहाँ विक्रम संवत 1341 के सती अभिलेख में दमोह स्थान नाम मिलता है। इसके चतुर्दिक पुरातात्विक संपदा का अकूत भंडार बिखरा है। बांदकपुर, कुंडलपुर, सिंगोरगढ का किला और निकटस्थ मूर्ति वास्तुशिल्प अन्यतम हैं। बुंदेलखंड की कला यात्रा एक संस्कृति यात्रा है जिसमें वृहत्तर रूप में महौवा का विविध कला विस्तार, ग्वालियर की ध्रुपद गायिकी, ओरछा की चित्रकला की बुंदेलीकलम आदि कई आयाम जुड़ते हैं। हमारे संस्कार और संस्कृति एक ही धरातल के अन्योन्याश्रित पहलू हैं। वे हमारी चित्र और मूर्ति कलाओं में विभिन्न जीवन संस्कारों और सज्जाओं में रुपायित हैं। गोदना, महावर, मेंहदी, लोकनृत्य उन्हीं के विम्ब हैं।

बुंदेलखंड के लोकगीतों में जन्म विवाहादि के बन्ना, बधाई, संस्कार गीत, वर्षा-बसंतादि के ऋतु गीत, फाग दिवारी के कजरी, मलहर आदि त्यौहार गीत, ढीमरयाई, यादवी जाति गीत, बोनी, कटाई, चक्की आदि के कृषि क्रिया गीत, भजन, लोरी, बंबुलियाँ जैसे मेला गीत, देवी और हरदौल गीत आदि के वर्गीकरण में यहाँ की लोक संस्कृति झलकती है।

बुन्देलखंड में लोकनृत्य भी उतने ही मनभावन हैं। इन्हें भी हम जातिगत- बरेदी (अहीरों द्वारा) कांडरा (रजक), राई (बेड़नी), ढिमरयाई (ढीमर और धोबी), ब्यौहारी नृत्य- सैरा, जवारा, बधाई, नौरात तथा आदिवासी करमा, सैला, सुआ आदि भागों में बांट सकते हैं। इन पर सामूहिक वन संस्कृति की छाप है जो बुंदेलखंडी समाज के जीवंत हर्षोल्लास की सहज अभिव्यक्ति है। (संदर्भ - बुंदेलखंड की संस्कृति और साहित्य- रामचरण हयारण मित्र) रातभर चलने वाले ख्याल और कहरवा के समन्वय से तीव्र ध्वनि उत्पादक मृदंग, ढोलक, टिमकी, रमतूला, ढपला, मजीरा, हारमोनियम के साथ लोकनृत्य राई, उद्याम आवेग की आदिमता लिये हुए पं. विष्णुदत्त पाठक के निर्देशन में विदेशों में भी बुंदेलखंड का प्रतिनिधित्व कर चुका है। यह

बेड़नी तर्क और सौबत के बीच जबाव तलब का संवाद है। यह केवल श्रृंगार ही नहीं सामाजिक सामयिकता को भी छूता है।

पीपर को पत्ता डुलत नैया / इन यारों की यारी मिटत नैयां।

सौबत-पीपर को पत्ता डुलाय दे हो /

इन यारों की यारी मिटाय दे हो।

मिसरी हो गओ नोन/माटी को तेल अतर हो गओ।

बुंदेलखंड की लोक कथाओं का भी अपना सांस्कृतिक महत्व हैं, इसकी शौर्य प्रधान गाथाओं में आल्हा-ऊदल, और राजा अमान सिंह की वीरता का बखान राछरो, पावरे, साके आदि में होता है। प्रेम गाथाओं में भी आल्हा-ऊदल के साथ राजा भतृ हरि और रानी पिंगला, ढोला मारू आदि की कथाएँ मनोरंजक और कौतूहल वर्धक हैं। कुछ आलौकिकता प्रधान गाथाएँ भी हैं, जिनमें ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ देवी के आगे शीश दान और पुनर्जीवन आदि आस्था और अंधविश्वास पूर्ण किस्सा गोई से संयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त कुछ आदर्श कथाएँ श्रवणकुमार, हरदौल, चंद्रावली, मधुकरशाह, प्रवीण राय आदि आदर्श चरित्र को उजागर कर शिक्षा प्रधान होती हैं। आदर्श सामाजिक संबंधों को ये बुंदेली जनजीवन में पिरोकर सत्प्रेरणा देती हैं।

बुंदेली संस्कृति की अभिन्न अंग हैं- यहां के जनजीवन में प्रचलित कहावतें और पहेलियाँ। ये कठोर जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण से उपजे सूत्र वाक्यांश हैं। जो बुंदेलखंड के जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों को दर्शाते हैं। लोकानुभव, लोकव्यवहार, लोककल्याणकारी स्वरूप लेता हुआ लोक काव्य का अंश बनता है। यहीं लोकोन्नत लोकोक्तियाँ हैं। मैंने अपने शोध नायक अजयगढ (पन्ना) के मूर्धन्य साहित्यकार अंबिका प्रसाद दिव्य के अध्ययन में उनके बुंदेलखंड के ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ ढेर से प्रकाशित साहित्य के बीच लोकोक्तिसागर पांडुलिपि भी देखी जिसमें करीब तीन हजार लोकोक्तियाँ हैं। ये सात भागों में वर्गीकृत हैं।

1. ढकोसला (बेमेल बातों का कुतूहल जनक वर्णन)
2. अटपाए (कुचाल या शैतानी)
3. खुन्स (क्रोधावेश में दोष ढूंढना)
4. भेरि (गुस्सा दिलाने वाले काम का प्रेरक)
5. अचका (अतिशयोक्तिपूर्ण सुकुमारिता)
6. ओलना (आनंद वर्धक चीजों का वर्णन)
7. गह गड्ड (आनंदप्रद सामग्री संग्रह)

डॉ. कस्तूर चंद जैन ने अपने शोध प्रबंध - बुंदेलखंड प्रदेश की लोकोक्तियाँ, मुहावरें तथा अन्य उपादान में उनकी संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सप्राणता दर्शाते हुये कहा है कि सत्य सार्वजनीन और सर्वकालिक होता है जैसे बहुभाषी लोकोक्तियाँ। पर कहावतें स्थान और कालबद्ध होने से भिन्न-भिन्न होती हैं। इनका वर्गीकरण चार शीर्षकों में किया गया है।

1. **आलोचनात्मक कटूक्तियाँ-** आंख के अंधे नाम नयनसुख
2. **शिक्षाप्रद-उपदेशक-**त्रिया तेल, हमीर सेठ, चढ़े न दूजी बार
3. **पोषणात्मक-समर्थक-**

   डार को चूको बंदरा, आषाढ़ को चूको किसान
4. **अंग्रेजी प्रभाव साम्य-**

   जे. बरसे, ते बरसे का (वार्किंग डाग्ज सेलडम बाइट)

टीकमगढ के कुंडेश्वर मधुकर मंडल का यह स्तुत्य कार्य था। उनके 16 मार्च 1941 के अंक में 100 बुंदेली शब्द या 50 कहावतें या पहेलियाँ 10 ग्रामगीत भेजने वालें को एक वर्ष तक मुफ्त मधुकर देने की घोषणा की गई थी।

बुंदेली लोकोक्तियों और कहावतों के साथ उनकी पहेलियों का भी अपना महत्व हैं। डॉ. कृष्णकुमार हूंका के अनुसार पहेलियों के सृजन का उद्देश्य मूलतः सामाजिक है। वे शिक्षण बुद्धि परीक्षण, चित्त की एकाग्रता, अनुमान शक्ति में वृद्धि, उर्वरकल्पना, आत्म विश्वास जैसे गुणों के विकास में मुख्य सहायक हैं।

सागर विश्वविद्यालय के बुंदेली पीठ की पत्रिका ईसुरी (संपादक डॉ. कान्ति कुमार जैन) और मामुलिया (सं. नर्मदा प्रसाद गुप्त) जैसे पत्रिकाओं ने बुंदेली के शोध कार्य को गति दी है। प्रो. कैलाश भाटिया ने बुंदेली भूगोल में लिखा है- डॉ. लता दुबे द्वारा प्रस्तुत बुंदेली क्षेत्र की भाषा मानचित्रावली ही ऐसा कार्य है जो पूर्णरुपेण क्षेत्रीय कार्य पर आधारित बोली भूगोल की दिशा में किया गया अच्छा प्रयास है। उन्होने आंचलिक रूप से बोली को विभाजित किया है- बेध बुंदेली, चक्रा बुंदेली, केका बुंदेली, नरता बुंदेली, सार्थवाही, व्यास जो म.प्र. के विभिन्न बुंदेलखंडी जिलों में बोली जाती है। अंग्रेजी शासन से सीधे प्रभावित रैल मार्गीय क्षेत्रों में बुंदेली का मूल रूप शिक्षा से प्रभावित हुआ है, पर रियासती बुंदेली मौलिक रही। इसकी मौलिकता बुंदेली माटी के सौंधेपन और लालित्य में किसी ग्राम्या के आकृत्रिम लावण्य से कम नहीं। उसकी लुनाई और नगरीय बुंदेली के मेकअप में भारी अंतर है। माँ के आँचल में दुलारपाती बुंदेली रसात्मक, संवेदनशील हृदय से हृदय की अनौपचारिक भाषा रही है। बिहारी की नायिका सी उसकी लचक ललचोहीं बांन सी है।

उसके शब्दों की अपनी देशज छटा है, खेतों और खानों की खनक है। नगाड़ों की गमक है। ठेठ बुंदेली का ठाठ है, रस की गांठ है जो जरा सा दबाने से ही चूं पड़ती है।

बुंदेली में बहुधा संज्ञाओं के बहुवचन बनाते समय अंत में अन प्रत्यय जोड़ देते हैं। जैसे भैयन, बहनन, बेटन, बिटियन आदि। इसका उच्चारण ओकारांत होता है जैसे- उठवो, बैठवो, बोलवो, चालवो आदि। इसके सा, से, सी, वाचक शब्द भी उपमाओं में मिश्री घोलते हैं जैसे मरी सी धरी, बंदरा सो बमकत, दीं सी टिरकत, लपसी सी चाटत आदि बुंदेली में नाएं, माएं, इतै, उतै, ईखौ, उखौ आदि सर्वनाम और चाने, राने आदि क्रियाएँ मधुर है।

बुंदेली साहित्य और संस्कृति के सर्वेक्षण में ईसुरी को खारिज नहीं किया जा सकता। उनकी फागें, लोक गायिकी और लोक नृत्य दोनों में समा बांधती हैं। आल्हा के बाद ये ही बुंदेली जन जीवन का स्पंदन है। बुंदेलखंड के मध्यकालीन कवियों में वे प्रमुख हैं। मुंशी अजमेरी जी के शब्दों में -

तुलसी, केशव, लाल, बिहारी, श्रीपति, गिरधर/ रसनिधि राय प्रवीन, पजन, ठाकुर, पद्माकर,

कविता मंदिर कलश सुकवि कितने उपजाये/कौन गिनावे नाम जायें किसके गुन गाये।

यह कमनीय काव्य कला की पुण्य भूमि है /सदा सरस बुंदेलखंड साहित्य भूमि है।

इसी क्रम में द्विवेदी युग के हटा के हीरा डॉ. लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री, रमा, और आधुनिक पीढ़ी के बर्तलाई के संत कवि कहलाने वाले ललित निबंधकार डॉ. श्यामसुंदर दुबे का नाम अग्रगण्य है। जिनके गद्य-विषाद बांसुरी की टेर, ही नहीं खड़ी बोली पद्य- रीते खेत में बिजूका तथा धरती के अनंत चक्करों में, को समीक्षक डॉ. विजय बहादुर सिंह ने, खेत की भाषा में लिखी गई कविताएँ- कहकर लोकमान्यता दी है।

फाग काव्य बुंदेली की आत्मा है। ईसुरी पत्रिका का नामकरण उन्हीं को श्रृद्धांजलि है। गंगाधर व्यास और ख्याली राम उन्हीं से प्रभावित थे। फाग काव्य लोक जीवन की भांति विकासशील रहा है। उसकी सादगी उसकी सहज अभिव्यंजना में है-

ऐंगर बैठ लेव कछु कानें, काम जनम भर रानें।
सबको लागो रात जियत भर, जौ नई कभेंउ बढ़ाने।
करियो काम धरी भर रैके, बिगर कछु नई जानें।
जो जंजाल जगत कों ईसुर, करत-करत मर जानें।

इस कुछ कानें में गहरी व्यंजना छुपी है। फागों का उद्भव मध्यकालीन लोक काव्य प्रतियोगी अखाड़ों से माना जाता है ईसुरी का मुख्य योगदान संशोधित चौकड़ियां फागों के विकास में है। इनके बोलों ने ही इनके गतिज राई नृत्य को मुखर किया। इनके नमी गवैया धीरे पण्डा थे, और नर्तकी एगिया एवं सुंदरिया रंगरेजिन भगनी द्वय थी, जिन्होने इनके प्रचार-प्रसार को चमकाया। इनकी लोकप्रियता उनकी समस्या पूर्ति प्रधान फड़बाजी से भी बढी। यह केवल श्रृंगार काव्य नहीं दर्शन का भी काव्य है -

एक दिन होत सबई कौ गौनो, होनो और अनहोनो/ जाने परत सासरे मैया, बुरऔ लगे चाय नैनो।

यह मृत्यु बोध विवाह संस्कार के माध्यम से अंतिम संस्कार का दार्शनिक संकेत है जो ईसुरी जैसों के सामर्थ की बात थी। बुंदेली के शब्द सामर्थ्य, पर उसके विद्वान शोधकर्त्ता डॉ. छवि नाथ तिवारी की संकल्पना महत्वपूर्ण है। उनमें प्रयुक्त प्रतीक शब्दावली अर्थवत्ता उन्नायक है। प्रतीकों ने तो दीवान हरपालपुर तक को नतमस्तक कर दिया।

भौंरा जात पराये बागे, तनक लाज न लागे/घर ही कली कौन कम फूली काए न लेत परागे।

इन फागों में युगबोध भी था। संदर्भ सापेक्षता थी- अंग्रेजी परी गारी गम खाना/कहाँ बने चौकी कहाँ बने थाना।

उनके प्रतीक अनेकार्थी भी है। एक ही छाती शब्द के कई अर्थ- हमें लगा लेओ छाती- (आलिंगन) कईयो गौने जोग भई छाती (उरोज विकास), जासो जरत रात है छाती (हृदय) बहुअर्थी हैं। उनकी प्रेरसी रजउ भी कभी-कभी अशरीरी प्रतीक सी लगती है। देखी रजउ काउ ने नैया, कौन बरन तन मैया। जीवंत भाषा बुंदेली का यही शब्द सामर्थ्य लोक जीवन के विविध रूप रंगों में उदघटित है। डॉ. वीरेन्द्र निर्झर के अनुसार- बुंदेली भाषा का सौन्दर्य उनकी अनूठी मिठास है। उसके अनुरुप ही उसकी बसंत सज्जा का कहना ही क्या। व्यवहारिक भाषा ने उसके खुरदरे पन को एकरूपता प्रदान कर अपने में स्वभाविक रीति से घुला-मिला लिया। कहा गया है - जहाँ संस्कृति से लोकगीत जन्मते हैं वहीं लोकगीत सांस्कृति परिवेश, बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित कर देते हैं। बुंदेलखंड के वस्त्राभूषण, संस्कार गीत, लोक विश्वास, लोक आदर्श, लोक कला और सांस्कृतिक परिदृश्य बुंदेली फागों में मुखरित है। बुंदेली के लालित्य की अरुणाभ लालिमा संपूर्ण हिन्दी का श्रृंगार है। हमारे संस्कार और संस्कृति बुलंद बुंदेली में मुखरित है।

- डॉ. रमेश चंद्र खरे

कविता–

मानुष की खाल

हाथिन के दांतन के खिलौना बने भांति–भांति
बाघन की खाल तपसन के मन भाई है।
मृगन की छालन को ओढ़त न जोगी जती
छेड़ी की खाल थोड़ी पारी भई लाई हैं।
सांभर की खालन को बांधत सिपाहिया लोग
गैडन की खाल राजाराव को सुहाई है।
कहे एक प्रभु राम के भजन बिना,
मानुष की खाल कोनऊ काम नईं आई है।

पैसा

पैसा बिन बाप कहे बेटा जो कपूत भयो,
पैसा बिन भाई कहे कैसो दुख दाई है।
पैसे बिन जोरू कहे निखट्टू के पाले परी,
पैसे बिन सास कहे कैसो जो जमाई है।
पैसे बिन भार वास पैसे बिन भगवा पास,
पैसे बिन देव नई करत सहाई हैं।
कहत हैं कवि देखौ पैसा राखौ अपने पास
पैसे बिन मुर्देहु ने लकड़ी न पाई है।

सुश्री–लक्ष्मी ताम्रकार, दमोह

हटा की छटा

राजाराम मिश्रा "अवधेश"

हम वासी बुंदेलखंड के "हटा" हमारा काशी।
उत्तर में रक्षक बन–बैठे, गौरीशंकर अविनाशी।।
दक्षिण किला बनो अति सुंदर,थे हट्टेशाह अधिशासी।
जिसकी छटा है– अजब निराली,दर्शनीय नक्काशी।
पूरव में चंडी जी बैठीं रक्षक बनी हमार।
पश्चिम में है सरहद बाँधे सरिता बहत सुनार।।
जिसके घाट बने अति सुंदर शोभा बनी अपार।
रामगोपालजी और बाला जी के पावन दरबार ।।
चंडी जी मंदिर के बाजू बैठी है गायत्री माता ।
दर्शन करवे लगो रहत है, नर नारी को ताँता।।
नदी किनारे घाटों पे हैं, मंदिर बने अनेक।
गूँजत रोज आरती के स्वर होते शिव के जलाभिषेक।।
"बंधु हजारी" की कोशिश हरदम विकास की खासी।
"अवधेश" करेंगे कृपा हमेशा–काशी के अविनाशी।।

– राजाराम मिश्रा "अवधेश"
मिड़ारी (हटा)

बुंदेली कहावत

बँदरा बैला जेठो पूत। जो बिरले कें होय सपूत।।
जो लो भूत गंगा जू गये। तो लो मरघटा जुत गये।
अकेली हरदसिया। पूरो गाँव रसिया।।
जहाँ–जहाँ सुक्को मठा खों जाँय। पड़ा भैंस दोई मर जायँ।
होत भोर झाड़े ने गये। बारें जिनके ब्याव ने भये।
ते नर सदा बिबूचे रये।
खेती करे आलसी भीख मांग सुस्ताय।।
सत्यानाशी को कहे अटठ्नास हो जाय।
माघे गेहूँ जेठे घी भादों तिली कपास।।
बहू मायके घी घरे राखें होत बिनाश।
विप्र, टहलुआ, अर्र धन बिटियन को परवार।।
इतने में धन ने घटे तो पीपर राखो द्वार।
वक्रा दानी, सूर,नृप, पंडित वैद निदान।।
जे दस निर्भय चाहिए जुआरी जवान किसान।
चंदन चाँवर चून त्रिया रंक शंख, सन, सूत।।
जे दस पतरे चाहिए तौल राग रजपूत।
सिंह मूंछ और फाणिक माणि पतिव्रता को गात।।
सूम थौलिया–कृपण धन मरें लगें जे हाँत।
पय पानी और पानहीं दान मान सम्मान।।
जे नौ मोटे चाहिए सावं राज दीवान।
घर घूँघट और घाँघरो, फरी डार त्रिया नैन।।
ये सातौं नीचे चाहिए नमस्कार गुरू दैन।
विप्र वैद नाऊ नृपत श्वान सौत मंजार।।
जहाँ इकट्टे जे जुरें अक्सर होय बिगार।
तीतुर बौड़ी बादरा–विधवा काजर रेख।।
बे बरसें बे पति करें– ई में मीन न मेख।
बहु बालक चालक जहाँ अबला मालक होय।।
नरपुर की तो का कहें सुरपुर ऊजर होय।।
साख सिफारिस परसबो–पर घर दान दुहान।
इन पाचों से जो बचे आई चतुर सुजान।।

– संकलन (राजाराम मिश्रा)

बुन्देलखंड की बमबुलियाँ

- डॉ. प्रेमलता नीलम, काव्यकुंज

बुन्देलखंड साहित्य संस्कृति का समृद्ध क्षेत्र है। विकास की ओर निरंतर अग्रसर है। लोक भाषा बुंदेली में माधुर्य लावणता, सहजता, सरलता जो जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करती लोकभाषा के प्रसिद्ध लोक कवि आल्हाखंड के रचयिता जानिक से लेकर कवि ईसुरी का लोक साहित्य बुंदेलखंड की पहचान है। अधिकतर लोक कवियों ने मार्मिक परम्परागत रचनाओं का लेख किया जो गॉव-गॉव में समय अवसरों पर वे रचनाएँ गाई जाती है आज भी स्वर गूँजते हैं, परम्परागत गीतों की श्रेणी में आने वाले कुछ रचनाकारों के नाम विलुप्त हो गये। वही रचनायें तीज, त्यौहार, वैवाहिक रस्मों में गायीं जाती हैं। इसी तारतम्य में बुन्देलखंड के गांव, शहरों के विभिन्न त्यौहारों की अनोखी छटा विद्यमान होती है। दीपावली, दशहरा, कंजालिया, होली की तरह, मकर संक्रांति, बसंत पंचमी, शिवरात्रि पर्व पर हर्ष उल्लास के साथ बमबुलियाँ गीतों की बहार रहत है। बुन्देलखंड के अन्य भागों में इसे लमटेरा भी कहते हैं। बमबुलियाँ का अर्थ है लम्बी टेर लगाकर बम-बम भोले बोलना अर्थात बम भोले बोलने वाला। शिवमंदिर बाँदकपुर, कुण्डेश्वर, ओंकारेश्वर, नर्मदातट या जहाँ-जहाँ शिवमंदिर होता है वहां माघ मास के मेले का आयोजन होता है इस अवसर पर भक्त श्रद्धालु आते-जाते बमबुलियाँ अर्थात लमटेरा की तान स्वर लय, ताल के साथ कंधे पर कॉवरी रखे गाते चले जाते हैं। यह कहते हुए यात्रा आरम्भ करते हैं ..

सपर लइयो काशी झिरियां रे,
काशी झिरियां रे कट जेहैं, जनम के पाप हो....

इन पंक्तियों का अर्थ है, काशी बनारस की पावन गंगा में जो स्नान करता है उसके पाप कट जाते हैं, गंगा के समान अन्य छोटी-छोटी पावन नदियाँ गंगा, नर्मदा, यमुना का आभास दिलाती है। बमबुलियाँ समूह में दो-दोप्राली बनाकर महिला एवं पुरुष भक्तिरस में डूबते हुये झूम-झूम कर गाते हुये, शिवालय तक पहुँच जाते हैं। इन बमबुलियाँ गीतों में शिव आराधना होती है। काँवरे अब कंधे पर कांवरी रखे हुये जिसमें पवित्र गंगाका जल होता है उसे चढाने शिव दरबार पहुँचाते हैं यह कहते हुये..

इमरती के जल भरती रे,
जल भरती रे भोला बाबा खाँ देती चढाय रे ..
'इमरती के हो...

दमोह जिले में स्थित बांदकपुर शिव का मंदिर है जिसे जागेश्वर धाम कहते हैं। यहां स्थित जल कुंड को इमरती जल कहते हैं, यह ऐतिहासिक धार्मिक स्थल है। बमबुलियाँ गीतों में कथात्मक वर्णन होता है। कम शब्दों में भावपूर्ण अर्थ स्पष्ट होते हैं। अतः दो लाइन में यह बुंदेली पद समाप्त होता है। तीसरी लाइन में लम्बी टेर होती है, भक्त कहते है...

दरस की बेरा भई रे,
बेरा भई रे पट खोलो छबीले भोला नाथ हो !
दरस की अरे हो...

इन गीतों में हास्य, व्यंग्य, संयोग वियोग का पुट होता है, बुन्देली भाषा का माधुर्य गीतों को सरस बनाता है। निम्न बमवुलियां में भक्त जन कहते हैं कि ..

अतर की तो दो-दो सिसियाँ रे,
दो-दो सिसियाँ रे इक संजा लगाऊँ इक भोर रे..
अतर की अरे हो..
फूलन के दो-दो गजरा रे
दो-दो गजरा रे, इक संजा चढाऊँ इक भोर रे..
फूलन के अरे ... हो ....
मंदिर का वर्णन करते हुए भक्त कहते हैं....
मंदर के कलशा दिखावें हो -
कलशा दिखावें, पीरो झण्डा लहर लहराये हो ,
मंदर के अरे हो ...
महिलायें कुछ यूँ कहती है-
भोले बब्वा झेला खों बिरजे रे,
झेला खों बिरजे बे तो पोंचे मलनिया के बाग हो..
महादेव बाबा हो..
गोरा रानी भंग पीसे रे,
भंग पीसे रे, भोले बाबा खों देती पिबाये हो..
गोरा रानी हो...

महिलायें अपनी मनो भावनायें इस तरह व्यक्त करती है...

नर्मदा को जल भरती रे,
जल भरती रे भोले बाबा खों देती चढाय रे

बुन्देली चेतना के गायक - ईसुरी

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

आज की भाषा में कहें, तो महाकवि ईसुरी आजकल बुंदेली संस्कृति एवं साहित्य के ब्रांड एम्बेसेडर मान लिए गये हैं। आज बुंदेलखंड का आम और खास बुद्धिजीवी और बिना पढ़ा आदमी ईसुरी पर नाज करता है। पर 60-70 वर्ष पहले तक बुन्देलखण्ड के बुद्धिजीवी और बुन्देलखण्ड के ही क्यों हिन्दी के विद्वान भी उनको अनदेखा करते थे। वे उन्हें कवि ही नहीं मानते थे। वैसे तो 'ईसुरी' अपने जीवन काल में अपनी जादुई फागों और चौकड़ियों के कारण बुन्देली जनता के हर दिल अजीज हो गये थे। 20 वीं सदी के तीसरे दशक में हिन्दी भाषा-भाषियों के मन में अपनी लोक संस्कृति के प्रति प्रीति पैदा हुई। स्वर्गीय पं. रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम गीतों का संग्रह किया। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोकगीतों की खोज में गांव-गांव की खाक छानी। बुन्देलखण्ड में भी इस धूल भरे हीरे की याद आयी। राजकवि मु. आजमेरी और ओरछा नरेश वीरसिंह जी रूचि और सहयोग से ईसुरी की फागों के संकलन का कार्य आरम्भ हुआ। श्री कृष्णनंद गुप्त, पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', डॉ. शंकरलाल शुक्ल, श्री श्याम सुन्दर बादल, प्रो. श्रीचंद जैन, नाथूराम चौरसिया, श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त, श्री लोकेन्द्र सिंह नागर ने ईसुरी पर प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराके ईसुरी का मूल्यांकन किया है। सागर विश्वविद्यालय ने श्री कान्ति कुमार जैन के संपादन में ईसुरी पत्रिका का प्रकाशन कर ईसुरी का अवदान स्वीकार किया।

फाग साहित्य एवं ईसुरी पर शोधकर्ताओं के अनुसार महाकवि मऊरानीपुर के पास मैढ़की गांव में पैदा हुये थे। 'ईसुरी' की जन्मतिथि पर विभिन्न मत है पर डॉ. नाथूराम चौरसिया ने 'ईसुरी' का जन्म सम्वत 1898 चैत सुदी गुरुवार हो माना है। उन्होंने अपने प्रमाण में महाराज विजावर सामंत सिंह के बावर्ची वाकर द्वारा प्रदत्त जन्म-पत्री का हवाला दिया। वाकर ईसुरी के शिष्य थे और जगजीत सिंह के यहां ईसुरी के साथ कार्य करते थे। (ईसुरी का व्यक्तित्व लेख लोककवि ईसुरी और उनका साहित्य संपादन डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज-48) लोकेन्द्र सिंह नागर अपनी कृति 'ईसुरी' में इस तिथि का अनमोदन करते है। इनके पिता का नाम भोलेराम तिवारी और माता का नाम गंगा था। उनके माँ-बाप बचपन में ही स्वर्गवास हो गए। उनके मामा ने उन्हें पाला पोसा। इनके मामा भूधर नायक निःसंतान थे। वे ईसुरी को लुहर गांव ले आये वहीं उनका विवाह श्यामा (भोलराम मिश्र) से हुआ। मामा के पुत्र होने पर वे अपनी ससुराल में रहने लगे। जीवकोपार्जन के लिए वे धुर्रा के जमीदार मु. साहिब जगजीत सिंह के यहां नौकर हो गए।

ईसुरी की ईमानदारी जग जाहिर थी। वे बगौरा के किलेदार श्री चतुर्भुज की जमीदारी में कार्य करने लगे, धुरी वालों ने उन्हें बुलाना भी चाहा पर वे नहीं गये। (नागर ईसुरी भूमिका से) कुछ वर्षों बाद चतुर्भुज जी की जमीदारी कुड़क हो गई और रज्जब बेग के मरने के बाद उनकी विधवा आबादी बेगम के समय वे बगौरा में ही रहे। इस बीच वे विन्द्रावन भी गए पर लौट कर बगौरा ही आए। उन्हें बगौरा से बहुत लगाव था। अपनी फागों के कारण, वे प्रसिद्ध हो गए छतरपुर के महाराजा विश्वनाथ ने छतरपुर आमंत्रित किया। बिदा होते समय उन्होंने राजा के साथ उनके पुत्र को भी आशीर्वाद दे दिया पं. गंगाधर ने उनसे कहा कि महाराज उनके तो पुत्र ही नहीं है, वे बोले -

'मिथ्या नहीं कवि की वानी
जिव्हा बसैं भवानी'

कुछ समय पश्चात् विश्वनाथ सिंह जी के भवानी सिंह जी उत्पन्न हुए। महाराज ने उन्हें छतरपुर बुलाया और राजकवि का पद प्रस्तावित किया., पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया उनके जीवन से कई चमत्कारिक घटनाऐं जुड़ी हैं, कहते है एक बार उनके शरीर पर काला सर्प चढ़ गया था, पर वे शांत रहे, सर्प चुपचाप उतर गया।

ईसुरी ने अपने कवि को राजकवि ना बनाकर लोक कवि बनाये रखा। वे सन् 1909 में अपनी पुत्री की ससुराल धवरा में ब्रह्मलीन हो गये। ईसुरी, सूर, रैदास, शैली के कवि हैं। उन्होंने कविता लिखी नहीं बोली है वे वाचक परम्परा के कवि हैं। ईश्वरी अपने युग की शिक्षा प्रणाली के अनुसार पढ़ें लिखे साक्षर थे। ईश्वरी ने जनता से सीधे सम्वाद के लिये जनता की बोली का सहारा लिया। उन्होंने पढ़े लिखे लोगों की काव्य भाषा बृज भाषा, के स्थान पर बुंदेली को अपनाया।

ईसुरी सिर से पैर तक साधारण आदमी थे, वे जन्म से तो बुंदेली थे, मन से भी बुंदेला थे। वे सामान्य बुंदेला परिवार में पैदा हुए थे। दुखों की पाठशाला में पढ़ लिख कर पक्के हुए। वे छोटे गांव के छोटे जमीदारों के यहां, छोटे से नौकर थे, पर आदमी बड़े थे और

कवि भी बड़े थे। उन्होने कोई महत्वकांक्षा मन में नहीं संजोई। रोजी रोटी के लिये तो वे नर के मन मन्सबदार थे, पर कवि को किसी राजा का मन्सबदार नहीं बनाया। ईसुरी ने हजारों फागे लिखी। श्री लोकेन्द्र सिंह नागर ने 700 से अधिक फागों का संकलन किया है। उनकी फागों का फलक अनंत आकाश की तरह विशाल है। उन्होनें मानव जीवन के हर रंग को देखा है। लोग भले ही उन्हें श्रृंगार का रसिक कवि कहें, पर डॉ. गुप्त कहते हैं उन्हें केवल दर्द रजऊ के वियोग का नहीं, बल्कि जमाने भर का है। अपने आसपास के कटते पेड़ों का, फसल पर पत्थर पड़ने का, वर्षा न होने का।

ईसुरी प्रेम से लबालब भरे हैं,पर उनकी फागें विभिन्न रंग, स्वाद और अनुभव वाली है। कवि ने बुंदेली प्रकृति, पर्व, उत्सव, धर्म सब पर कलम चलाई है। उनकी चौकड़ियों में कृष्ण का भी वर्णन है।

जसुदै दैन उरानो जईये, हाल लला को कईये।

ईसुरी की फागों में जीवन का हर रंग मिलता है, उनकी फागों में उल्लास है, उत्साह है हास है, परिहास है, उनमें हंसी मिलेगी, तो आंसू भी मिलेगे, उनकी फागों में प्रेम की पुलक है तो विछोह की टीस भी। प्रेमिका की सुंदर छवि का, उनके हाव-भाव, चलने, उठने का जैसा स्वाभाविक रसीला, नसीला, चित्रण इनकी फागों में मिलता है, वह दूसरी जगह दुर्लभ है।

ईसुरी नारी रूप के कुशल चितेरे हैं। उन्होने चाहे किसी पाठशाला में काव्य, छंद व्याकरण का शास्त्रीय अध्ययन न किया हो, पर परम्परागत नायिका भेद का उदाहरण इनकी चौकड़ियों में मिल जाते हैं। वे सीधी, सरल व्यंजना के हामी हैं, पर उन्होने रूप वर्णन में प्रतीकों का सहारा लिया है। वे जवानी और रूप की तुलना बगिया से करते हैं। प्रेमी सदा प्रेमिका के पास रहना चाहता है। वह कहता है -

जो कहूं छैलछला हो जाते, परे उंगरियन राते।

इनकी रचनाओं में मानव मन की सहज कामनाओं का वर्णन है। हर व्यक्ति की इच्छा अपनी प्रेमिका के पास फुरसत में बैठकर बतियाने की होती है, इसी इच्छा को ईसुरी ने सीधी सरल भाषा में कह दिया है -

ऐंगर बैठ जाओ कछु काने, काम जनम भर राने।
सब खां लागो रात जियत भर, जो नईं कभऊ बढ़ाने।

वे मनमौजी रसिक कवि ही नहीं, वे नैतिक मूल्यों का आदर्शो का सम्मान करने वाले हैं। वे सामाजिक बुराईयों को दूर करना चाहते हैं। उन्होने सामजिक समरसता पर जोर दिया, व आपसी झगड़ों को आपस में मिलजुल कर निपटाने की सलाह भी देते हैं। पंचायत और सरपंचों की असलियत उनसे छिपी नहीं, अफसरों के कामकाज के ढंगपर, घूसपर उन्होने बेलाग टिप्पणी की। ईसुरी जितने भावपक्ष के सशक्त हैं उतने ही अभिव्यक्ति एवं कला पक्ष में भी। उनकी भाषा सरल पर सबल है। उनकी बोली किताबी नहीं है, आम जनता द्वारा नित्यप्रति बोली जाने वाली भाषा है, उन्हें अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का टोटा नहीं पड़ता है। उन्होने सिद्ध कर दिया है कि बुंदेली न दरिद्र है न शक्तिहीन। हर प्रकार के भावों को हर रंग को प्रकट करने की उसमें क्षमता है उनके काव्य में मुहावरों कहावतों का भरपूर इस्तेमाल मिलता है। उनकी भाषा ग्रामीणों के लिए बिल्कुल दुरुह नहीं है। वे अविधा के कवि हैं पर लक्षणा एवं व्यंजना के भी बेजोड़ कवि हैं। ईसुरी के काव्य में लोकजीवन का हर रंग व्यक्त है, इस जनपद का मौसम उसके शिशिर बसंत, उसके तीज त्योहार, उसने दर्शनीय स्थान सब कवि के काव्य के उपादान है।

वे दुनिया से विरक्त कवि नहीं थे, संसारी थे। संत नहीं थे, पर आस्तिक थे। वे किसी मत विशेष से जुड़े नहीं थे। उनकी फोगों में रामविवाह चित्रित है, तो कृष्ण की बाललीला और रासलीला भी है। उनकी फागों में भगवान से निवेदन भी है। उन्होने जीवन की क्षणभंगुरता को स्पष्ट करते हुए कहा -

तनका कौन भरोसो करनै, आखिर इक दिन मरने।
जो संसार ओस का बूंदा, पवन लगै से ढुरने।

एक रूप वर्णन देखिये-

तिलकी परनतिलन में हलकी, बायें गाल में झलकी।
मानो चुई चांद के ऊपर, बुंदकी जमना जलकी।
मानो फूल गुलाब के ऊपर, उड़ बैठन भई अलकी।

ईसुरी बुंदेली भवन की नींव की ईट भी हैं कंगूरे भी। वे भाषा की संभावना और शक्ति हैं, उनकी भाषा में बुंदेली का मानक रूप छिपा है।

- वीरेन्द्र बहादुर खरे
सेवा निवृत प्राचार्य
कटरा, बाजार, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुंदेली लिखना

- पं. गुणसागर सत्यार्थी

बुंदेली लोकचित्र यहां के लोकमानस की अमूल्य निधि है ये चित्र बुंदेल खंड की गौरवशाली परम्परा, संस्कृति और लोकजीवन को उद्‌घाटित करते हैं। इन्हें सहेजना, संवारना और संरक्षण देना हम सब की जिम्मेदारी है। बुंदेलखंड बहुत बडे भू-भाग में फैला हुआ है। वन पर्वतों, नदियों और बीहड़ों ने उसके सांस्कृतिक स्वरुप को विविधताओं से भर दिया है।

महालक्ष्मी पूजन -

महालक्ष्मी के पूजन हेतु विशेष आलेखन किया जाता है, जिसे सुरेता-सुरेतु कहते हैं। सुरेता से तात्पर्य सुरों के देवता सुरेता से है तथा उनकी पत्नि-माँ सुरेतु कहलाती हैं। वस्तुतः लोकचित्रण को अलग-अलग भाषा क्षेत्र में अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे- मालवा में मांडना या मांडने, राजस्थान में थापे, लेकिन आलेखन शुद्ध खड़ी बोली का शब्द है, वह कहीं भी दीवारों पर बनाई जाने वाली लोकचित्रकारी के लिए प्रयुक्त नहीं होता। बुंदेलखंड में दीवार पर उकेरे जाने वाली चित्रकारी को लिखना कहते हैं। बुंदेलखंड में कहीं-कहीं सुरॉयती-सुरॉयता की दो आकृतियां भी बनाई जाती हैं, लेकिन वे आकृतियां आकार में छोटी होकर मात्र चार प्रकोष्ठ की होती हैं। अधिकांश तो मात्र एक ही सुरॉयती का चलन है, जिसमें सोलह घर होने की अनिवार्यता है। वस्तुतः दीवाली लक्ष्मी पूजन से संबंधित है और लक्ष्मी का मतलब धन संपत्ति से होता है। धन संपत्ति को सुरक्षित रखने वाले यह सोलह कोठे एक प्रकार से खजाने का प्रतीक हैं। उनकी रचना भी जटिल होती है, किसी प्रकोष्ठ में कोई प्रवेश नहीं कर सकता इस सोलह प्रकोष्ठ वाली रचना में पारम्परिक ढंग से लक्ष्मीजी की आकृति चार हाथ दो पैर, मुखाकृति भी उसमें शामिल है।
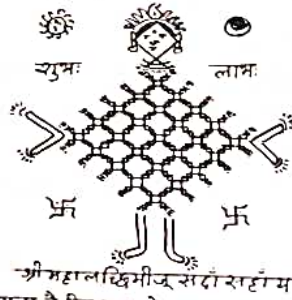
ऐसी मान्यता है कि यह सोलह घर वाली सुरॉयती जिस घर की स्त्रियां लिखना जानती हैं उस घर में सदैव रिद्धी-सिद्धी होती है।

वेमाता-

प्रसूति होने पर छठवें दिन छटी का आयोजन होता है प्रसूति वाले घर को पवित्र करने के पश्चात घर की बड़ी बूढी स्त्री प्रसूता के कमरे की दीवार पर एक पुतरिया लिखती हैं जिसे बेमाता कहते हैं। बेमाता नवजात शिशु एवं प्रसूता दोनों की रक्षक होती है। बेमाता की पुतरिया- पहले गुणा का चिन्ह बनाते हैं, उसके ऊपर और नीचे रेखाओं के दोनों सिरों को आड़ी रेखा खींचकर जोड़ते हैं, नीचे दो रेखायें खींचकर पैरों का आकार देते हैं और ऊपर हाथों को। ऊपरी रेखा के बीचों बीच तास के पत्ते पर बनी ईट का आकार खड़ा करते हैं, जिसके अंदर आंखे, नाक, मुख, बिन्दी आदि सजाते हैं।

सतिया-

प्रसूता की ननद घर के मुख्य द्वार पर दीवार पर दरवाजे के दोनों ओर गोबर से एक प्रकार का लिखना लिखती है, जिसे सतिया कहते हैं। गोबर की पतली बत्ती सी बनाकर गोल आकार में दीवार पर चिपकाते हैं। बाद में उसे चने की देवली से सजाते हैं। जैसा कि इस लिखना का नाम सतिया है तो उसके नाम के अनुरुप सात चक्र बनाये जाते हैं। महाभारत काल में बालक अभिमन्यु ऐसे ही सात घेरों (चक्रव्यूह) में मारा गया था, कदाचित यह सतिया चित्र उसी का प्रतीक है। इसे हम परिष्कृत भाषा में स्वास्तिक चिन्ह कहते हैं।

चौक पूरना -

सतिया और सातिया तो दीवार पर गोबर से लिखे जाते हैं, परंतु नीचे जमीन पर जो लोकचित्रण किया जाता है उसे बुंदेली में चौक पूरना कहते हैं। चौक कई प्रकार से पूरे जाते हैं- गोलाकार, वर्गाकार, पंचभुजाकार, षटभुजाकार इत्यादि।
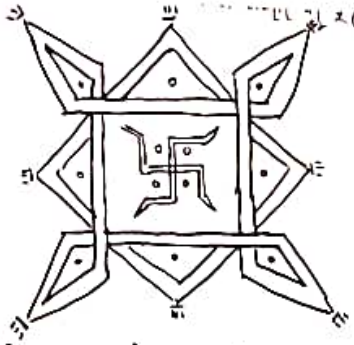
देवउठनी एकादशी पर पूरा जाने वाला चौक-

पितृपक्ष के प्रथम दिवस, घर में पुरखों की आत्मा आने की अगुवानी स्वरुप, सबेरे ही घर की स्त्रियां द्वारे पर ढिग लगा कर लीपतीं हैं, उस लीपे हुये स्थान पर एक विशिष्ट चौक पूरा जाता है, जिसे कनागत, उरैन कहते हैं। यह ढिग देकर लीपे हुये स्थान पर सफेद छुई को घोलकर भी बनाते हैं। अधिकांश स्त्रियां आटे से पूरकर ही यह कनागत उरैन का चौक पूरतीं है इसमें सूरज चंदा और नीचे दो जोड़े चरण चिन्ह बनाना अनिवार्य होता है। इन चरण चिन्हों को पुरखों के आगमन का प्रतीक मानकर इनका विधिपूर्वक अक्षत, पुष्प, जल आदि चढाकर पूजन अर्चन करते हैं।
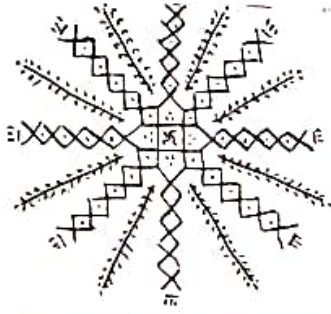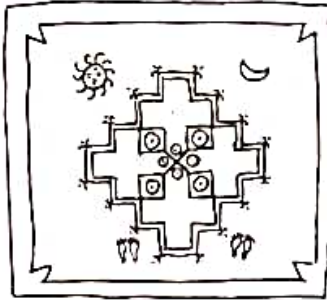
नागपाँचे -

श्रावण शुक्ल पंचमी को हमारे बुंदेलखंड के नागपाँचे कहते हैं। आज के दिन ग्रामीण तीर्थों पर मेले भरते हैं। घर की महिलायें मुख्य द्वार के दोनों ओर नागपाँचे का लिखना लिखती हैं। कहते हैं कि इसी दिन ब्रह्माजी ने नागों की माता कद्रू के शाप से नागों के मोक्ष हेतु सुमार्ग बताया था, इसी दिन आस्तिक ऋषि ने नागों को यज्ञ में आहुति बनने से बचाया था, इसलिये पंचवी के दिन महिलायें पांच नागों का लिखना लिखकर दूध, दूबा और फूले हुये चनों से विधिपूर्वक पूजन करती हैं।
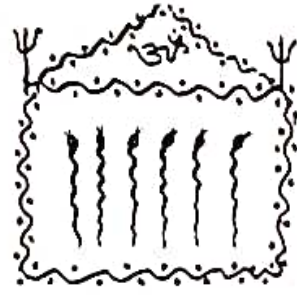
हरछट का लिखना-

भाद्रपद कृष्णपक्ष की छठवीं तिथि को नारद पुराण ललिता वृत कहता है और अग्नि पुराण अक्षयषष्ठी। यह भगवान कृष्ण के बडे भाई बलराम जी का जन्म दिन भी है बुंदेलखंड के लोक में यह वृत हरछट नाम से जाना जाता है। हर शब्द के अनेक अर्थ हैं इनमें एक जोतने वाला हल भी है। दाऊजी को हलधर भी कहते हैं, इस दिन बुंदेलखंड की स्त्रियां व्रत रखतीं हैं और हल से जोता, बोया हुआ अन्न एवं गाय का दूध ग्रहण नहीं करतीं। गांव की पोखरी में बगैर जोता बोया समाई का धान ही प्रयुक्त होता है एवं भैंस के दूध में पकाकर इस व्रत में स्त्रियां आहार ग्रहण करतीं हैं। हरछठ के पर्व पर घर की दीवार पर स्त्रियां हरछठ का लिखना लिखती हैं इसमें ऊपर सात पुतरियां होती हैं जो सप्तऋषियों का प्रतीक है, इन्हीं सप्तऋषियों का पूजन किया जाता है। सात पुतरितयों के नीचे बीच में आंवरी का पेड, पेड के नीचे एक छोटी पुतरिया लेटी हुई, जो एक शिशु का प्रतीक है, होती है। हल जोतते किसान की पुतरिया होती है और हल की नोंक से उस शिशु के पेट में धसती हुई दर्शायी जाती है, दूध दही बेचने वाली दो पुतरियों के अलावा चरतीं हुई भैंसे भी दर्शायी जाती है। सूरज और चांद तो बुंदेलखंड के सभी लिखनों में होते हैं।

लोक कथा के अनुसार हरछठ के दिन गाय का दूध नहीं खाते। कोई दूध बेचने वाली शहर को गाय का दूध बेचने गई एवं अपने शिशु को आंवरी के पेड के नीचे लिटाकर किसान की देखरेख में छोड़ गई भैंस के दूध के स्थान पर उसने गाय का दूध दूसरों को बेच दिया जिससे उस पर पाप चढ गया। लौटकर आयी तो देखा बच्चे के पेट में हल का कुशिया चला गया उन दूध दही वाली ग्वालनों ने प्राश्चित किया और समाई के चावल व भैंस का दूध लेकर सप्तऋषियों का विधिपूर्वक पूजन किया व हरछठ का व्रत रखा इससे ऋषि उन पर प्रसन्न हुये। किसान ने उस बच्चे का पेट कुशा लेकर सिल दिया बच्चा पुनः जीवित हो गया।

बुंदेली लिखना, एक चमत्कारी लिपी है यह पारम्परिक लोकचित्रकारी है।

- पं. गुणसागर सत्यार्थी

हटा-नगर परिक्रमा

- प्रेम शंकर ताम्रकार 'घायल'

बुन्देलखंड की सौंधी माटी से सौंधाई सुनार नदी की कल-कल धारा के तीर बसी, उपकाशी के नाम से चिन्हित हट्टेशाह की नगरी हटा किसी समय जिले का सदर मुकाम था। बाद में यह सागर एवं फिर दमोह जिले की तहसील कहलायी। हट्टेशाह का किला आज भी अपना सीना ताने इतिहास के स्वर्णिम अतीत का साक्षी है।
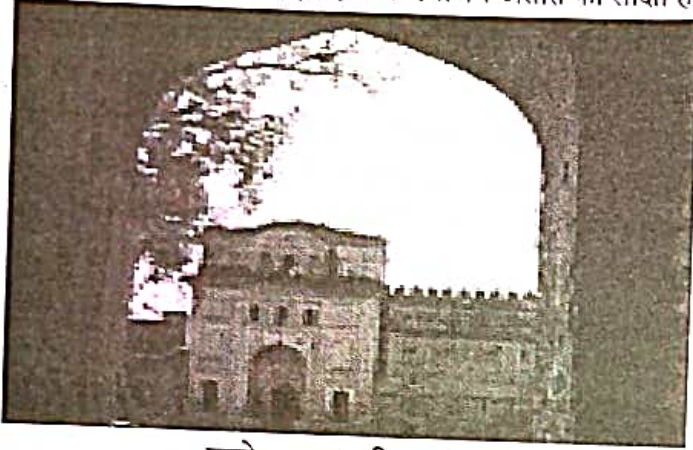
हट्टेशाह का किला हटा

शासन द्वारा बाउण्ड्री दीवाल को मरम्मत कर प्राचीन रूप में स्थापित कर दिया है। आज वे स्मारक, जो शहीद हुये राज घराने के दफनाये लोगों की याद में बनाये गये हैं, विद्यमान हैं। किले के पीछे बहते हुये नाले को रोकरल किले की सुरक्षा की जाती थी। यहां नहाने के लिये पक्के घाट भी बनाये गये हैं। कहते हैं इस नाले में मोती होते थे।

पाठ्य पुस्तकों में हटा पीतल के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध था। साथ ही साथ हटा के भटा भी प्रसिद्ध थे, जिन्होंने अपनी पहचान आज भी बनाये हुये हैं। लोकोक्ति है- हटा के भटा, दमोह के पान, सागर की रंडी, जबलपुर के जुआन। कहते हैं कि सागर में रिक्खा नाम से मशहूर रंडी थी। जिसका गला अत्यंत सुरीला था। वह श्रावण में जब सागर में झूले सजते थे, तब रिक्खा अपनी मंडली के साथ भजन सुनाया करती थी।

उत्तर वाहिनी जीवन दायनी सुनार नदी में जहां भरपूर पानी रहता था वहां अब पानी का टोटा हो गया है। नावघाट जहां वर्ष भर नाव चलती थी, वहां लोग पैदल नदी पार कर लेते हैं। पानी सूख कर हरा नीला होकर सड़न पैदा कर रहा है। उधर नगरपालिका ने भी पानी की उपलब्धता के आधार नगर डिंडोरी पिटवा दी है कि माह फरवरी के बाद नलों से जलपूर्ति संभव नहीं है। वहीं दूसरी ओर उपकाशी की धर्मप्रिय जनता ने भारी मात्रा में शंकरजी का निर्माण कर नावघाट में विसर्जित कर पुण्य लाभ अर्जित तो किया है, वहीं दूसरी ओर
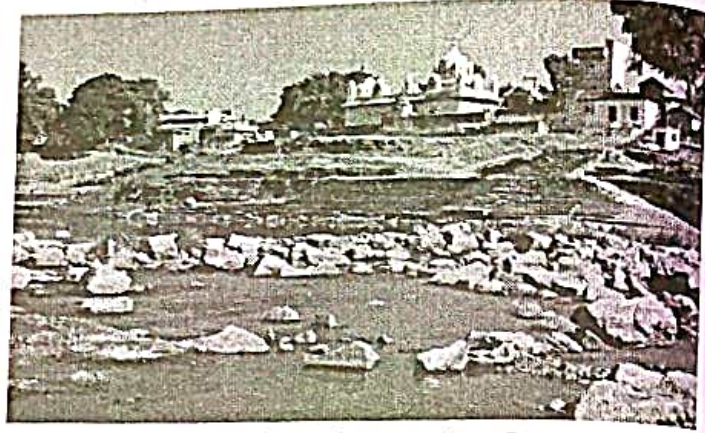
नाव घाट स्थित बिहारी जी मंदिर

घाट पर भारी मात्रा में मिट्टी जमा हो जाने से पानी में प्रवेश करना दूभर हो गया है। नदी की दुर्दशा देखकर कुछ सामाजिक संस्थाओं, नगर व गांव के स्वयं सेवकों द्वारा सफाई अभियान चलाया जा रहा है। सुनार तट पर नानाघाट - नावघाट, मटयाघाट, हजारी घाट, सुरई घाट, मातनघाट तथा श्मशान घाट है जिसमें हजारीघाट की छटा निराली है। शाम के समय घाटों पर बने मंदिरों का प्रतिबिंब मन-मोहक दृश्य सहसा अपनी ओर आकर्षित करता है।

उत्तर की ओर देव श्री गौरीशंकर जी का मंदिर स्थित है तथा उससे लगा हुआ श्मशान स्थल है। मंदिर में भोले बाबा परिवार के साथ नंदी पर सवार है। बाबा की मनोहारी झांकी के दर्शन कर दर्शनार्थी आत्मानंद में डूबकर असीम शांति का अनुभव करते हैं। वसंत पंचमी एवं शिवरात्रि पर मेला भी भरता है। स्व. राघवेन्द्रसिंह हजारी द्वारा इस मेले का आयोजन वृहद रुप में किया गया था, जो आकर्षण का केन्द्र साबित हुआ था। अब विगत वर्ष से 5 दिवसीय बुंदेली मेला का आयोजन नगर पालिका के माध्यम से श्री पुष्पेन्द्र हजारी द्वारा किया जा रहा है। जिसमें लोकगीत, भजन, कुश्ती, राई, बैलगाड़ी दौड, दंगल आदि विविध आयामों को सम्मलित किया गया है। जिससे बुंदेलखंड की परम्परा को सहज ही देखा जा सकता है।

देव श्री गौरीशंकर मंदिर का निर्माण हजारी परिवार द्वारा किया गया था। सुना गया है कि हजारी परिवार के प्रतिष्ठित व्यक्ति का अग्नि संस्कार जिस स्थान पर किया गया था। वहीं पर मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर परिसर के बाहर एक विशाल भव्य चौपरा है। जिसमें चारों ओर सीढियां बनी हुई हैं। इस चौपरा से बगिया में सिंचाई की जाती थी।

पूरब दिशा में माँ चण्डी का विख्यात मंदिर है, माँ जगदम्बा की सिद्ध मूर्ति यहां विराजमान है। गुजराती परिवार खेड़ावार समाज द्वारा मूर्ति की स्थापना कर मड़िया का निर्माण करवाया गया था। मड़िया के सामने यज्ञशाला है। इस सिद्ध क्षेत्र के नवीनीकरण का प्रयास हटा नगर के नागरिकों द्वारा किया जा रहा है। फलस्वरुप एक निर्माण कमेटी को गठित कर जनसहयोग से नवीनीकरण का श्री गणेश हुआ कि देश विदेश से सहयोग की ऐसी धारा प्रवाहित हुई जो रुकने का नाम ही नहीं ले रही है। जन मानस में दान देने की होड़ सी लगी प्रतीत होती है मां की मड़िया के ऊपर भव्य मंदिर का निर्माण, यज्ञ शाला का नवीनीकरण और धर्मशाला का सुव्यवस्थित निर्माण पूरा हो गया है। धर्मशाला का उपयोग शादियों के लिये भी होने पर लोगों में प्रसन्नता है। नौ चण्डी यज्ञ का आयोजन आये दिनों यहां होता रहता है।

चण्डी जी मंदिर के बाजू में गायत्री शक्ति पीठ है। जिसका निर्माण गायत्री परिवार के साधकों द्वारा किया गया है। यहां से प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में गायत्री मंत्र का प्रसारण किया जाता है। जन जागरण के क्षेत्र में - हम बदलेगें युग बदलेगा - का संदेश दिया जाता है। शक्ति पीठ द्वारा सुवाक्यों का लेखन कर जन साधारण को समाज में फैली कुरीतियों के प्रति सचेत किया जाकर सद् प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट किया जाता है। शांति कुंज हरिद्वार के द्वारा संचालित योग प्रशिक्षण का आयोजन भी जनता को सुलभ कराया गया। जिसकी उपयोगिता और जनमानस की रुचि को देखते हुए डॉ. एम.एम. पाण्डे द्वारा योग की विधाओं का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

दक्षिण में मद्दी के बगीचा में विराजे हनुमान लला की प्राचीन सिद्ध मूर्ति है। हरिहर बाबा द्वारा यहां धनुप यज्ञ का विशाल आयोजन किया गया था। धर्म प्रिय लोगों द्वारा अखंड रामायण पाठ विना किसी प्रयास एवं स्वप्रेरणा से निरन्तर होने का सौभाग्य भी यहां की उल्लेखनीय बात कही जा सकती है। मद्दी के बगीचे के नाम से बजरंग अखाड़ा भी अपनी पहचान बनाये हुये है। पास ही ग्राम गढ़िया में नदी किनारे मौजानंद महाराज की कुटी है। बाबा को जिसने भी देखा सदैव सदा बाहर ही देखा, वे नारायण-नारायण कहा करते थे। इनके कई चेले भी हैं। कहते हैं गढ़िया वासियों ने बाबा को शांति से नहीं रहने दिया तब बाबा ने कुपित होकर शाप दे दिया जिससे आज भी गढ़िया का विकास नहीं हो सका।

नदी के किनारे बिहारीजी मंदिर, बालाजी मंदिर, रामगोपाल मंदिर तथा शीतलामाई का मंदिर है। बालाजी एवं रामगोपालजी मंदिर में महन्तों द्वारा व्यवस्था की जाती है। इन दोनों मंदिरों में अखाड़े भी हैं। जिनका प्रदर्शन दशहरे पर किया जाता है। मद्दी के

श्री रामगोपाल जी मंदिर

बगीचा में हनुमान मंदिर का भी अखाडा बजरंग अखाडे के नाम से जाना जाता है। किले के पास किले का मंदिर बडे बाजार में श्रीराम मंदिर, पुत्रीशाला के पास दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर, आदिनाथ त्रिमूर्ति मंदिर, रतन बजरिया में जैन समाज का बड़कुल मंदिर, नामदेव समाज का मुरलीमनोहर मंदिर, सेन समाज का लक्ष्मीनारायण मंदिर, तीन बत्ती तिगड्डा पर साहू समाज का कौशलाधीश मंदिर, एवं कोरी समाज का मंदिर भी नगर में पाये जाते हैं।

हटा से 3 किलोमीटर की दूरी पर ग्राम मानपुरा में हठीले हनुमान का सिद्ध क्षेत्र विकसित हो रहा है। यहां प्रतिवर्ष माह अप्रेल में विद्वानों के प्रवचन होते हैं, कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वयं हठीले बब्बा करते हैं। जिनकी असीम कृपा एवं प्रेरणा से प्रेरित श्री मुकुटबिहारी मिश्रा निःस्वार्थ भाव से स्थल को जागृत करने का बीड़ा उठाये हुये है। उनका जीवन ही समर्पित होकर वे सेवाभाव में तल्लीन दिखाई देते हैं। वे अकेले ही प्रभु की आज्ञा से उनके द्वारा प्रेरित कार्यो को सफलता पूर्वक चुटकी में पूर्ण कर लेते हैं। इसके बाद भी उनमें कर्त्ता भाव नहीं देखा गया।

- प्रेम शंकर ताम्रकार 'घायल'

सुभाष वार्ड, हटा

****

बुन्देलखण्ड की काशी हटा में आयोजित

बुन्देली मेला 2008

के अवसर पर आपका

हार्दिक अभिनंदन

नगर पंचायत, तेंदूखेड़ा

जिला-दमोह (म.प्र.)

अरविन्द मोदी

अध्यक्ष

जगदीश प्रसाद शुक्ला

मुख्य नगर पालिका अधिकारी

नगर पालिका परिषद हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

द्वारा आयोजित **बुन्देली मेला 2008**

में आये हुए अतिथियों एवं कलाकारों का

हार्दिक अभिनंदन

कृषि उपज मंडी

दमोह (म.प्र.)

एच.एस. दुबे
सचिव

प्रदुम्य सिंह
अध्यक्ष

अ[illegible]ाशी हटा में आयोजित

बुन्देली मेला 2008

के अवसर पर आपका **हार्दिक अभिनंदन**

- शासन की रोजगार गारन्टी योजना को सफल बनाने में सहयोग करें
- जल एक राष्ट्रीय निधि है, जल का अपव्यय न किया जावे
- शासन द्वारा संचालित मुख्यमंत्री कन्यादान योजना को सफल बनाने में सहयोग करें
- शासन द्वारा प्रारम्भ की गई सभी योजनाओं को सफल बनावें

पं

जिला पंचायत

दमोह (म.प्र.)

अमर सिंह बघेल	**भगवानदास चौधरी**
मुख्य कार्यपालन अधिकारी	अध्यक्ष

माँ चण्डी जी का मंदिर, हटा जिला-दमोह (म.प्र.)